बंदियों के अधिकार

हैण्डबुक

HRLN
Human Rights Law Network
ह्यूमन राइट्स लॉ नेटवर्क
नई दिल्ली

बंदियों के अधिकार

जुलाई 2012

© सोसियो लीगल इन्फरमेशन सेंटर*

डिजाइन
बीरेन्द्र कुमार गुप्ता

मुद्रक
रूद्रा प्रिंटर्स,

प्रकाशक
ह्यूमन राइट्स लॉ नेटवर्क
(सोसियो लीगल इन्फरमेशन सेंटर का एकांश)
576, मस्जिद रोड, जंगपुरा, नई दिल्ली-110014
फोन: +91-11-24378854/24379855/56
email: publications@hrln.org
website: www.hrln.org

---

* हर तरह की कोशिश की गयी है कि गलतियों, विसंगतियों और अपूर्णताओं से बचा जा सके। फिर भी कोई अपरिहार्य त्रुटि या विसंगति रह गयी हो तो एचआरएलएन इसकी जिम्मेदारी लेता है।
इस संकलन का कोई भी भाग जनहित में ह्यूमन राइट्स लॉ नेटवर्क की बिना अग्रिम अनुमति परंतु उपयुक्त आभार के साथ प्रकाशित किया जा सकता है।

ह्यूमन राइट्स लॉ नेटवर्क

ह्यूमन राइट्स लॉ नेटवर्क (एचआरएलएन) मानव अधिकारों के संवर्द्धन के लिए प्रतिबद्ध अधिवक्ताओं और सामाजिक कार्यकर्ताओं का संगठन है। एचआरएलएन बच्चों, दलितों, अपंगों, एचआईवी पॉजिटिव लोगों, गृहहीन, जनजातीय लोगों, कैदियों, शरणार्थियों, धर्मिक एवं लैंगिक अल्पसंख्यकों, महिलाओं और मजदूरों आदि के अधिकारों के संवर्द्धन के लिए सामाजिक आंदोलनों, मानव अधिकार संस्थाओं और आधारभूत विकास समूहों के साथ साझेदारी करता है। एचआरएलएन मुफ्त कानूनी सेवा प्रदान करता है, जनहित याचिकाएं दायर करता है, एडवोकेसी करता है, कानूनी जागरूकता कार्यक्रमों का आयोजन करता है, उत्पीड़न की जांच करता है, अपने अधिकार जानिए जैसी पुस्तकें प्रकाशित करता है और अभियानों में हिस्सेदारी करता है।

आभार

यह पुस्तिका, गरीब व वंचित वर्गों के मानवाधिकारों पर काम करने वाली गैर–सरकारी संस्था 'ह्यूमन राईट्स लॉ नेटवर्क' की दो खंडों में प्रकाशित पुस्तक 'प्रिजनर राईट्स' के कुछ विशेष रूप से चिन्हित अध्यायों का संक्षिप्त अनुवादित संकलन है।

मूल पुस्तक 'प्रिजनर राईट्स' में बंदियों के अधिकारों से संबंधित विभिन्न विषयों को सम्मिलित किया गया है। प्रस्तुत पुस्तिका में हमने बहुत संक्षिप्त में महत्वपूर्ण चीजों को शामिल किया है।

इस पुस्तिका को तैयार और प्रकाशित करने का विचार 'ह्यूमन राईट्स लॉ नेटवर्क' के संस्थापक निदेशक एवं उच्चतम न्यायालय के वरिष्ठ अधिवक्ता श्री कॉलिन गोंसाल्विस के मन में आया ताकि बंदियों को उनके अधिकारों से संबंधित कुछ खास कानूनी जानकारी मिल सके। इसके साथ ही यह जानकारी वकीलों और सामाजिक कार्यकर्त्ताओं को भी मिल सकेगी जिससे वह बंदियों की कानूनी मदद और भी सक्षम तरीके से कर सकेंगे। इस पुस्तिका को तैयार करने में अधिवक्ता पंकज सिन्हा और अधिवक्ता मेघा नागपाल की विशेष भूमिका रही है। कानून की पढ़ाई कर रहे विद्यार्थी तुषार भूषण, जोसेफ और करण चाहर का भी उल्लेखनीय योगदान रहा है।

इस पुस्तिका की साज–सज्जा बीरेन्द्र कुमार गुप्ता ने की है और मुद्रण रूद्रा प्रिन्टर्स, नई दिल्ली से करवाया गया है। पुस्तिका को 'ह्यूमन राईट्स लॉ नेटवर्क', नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित किया गया है।

क्रिमिनल जस्टिस इनिशिएटिव
ह्यूमन राईट्स लॉ नेटवर्क', नई दिल्ली
जुलाई 2012

समर्पण

हम शहीदे आजम भगत सिंह और शहीद खुदी राम बोस एवं बन्दी अधिकारों के लिए लड़ने वाले अनाम योद्धाओं को समर्पित करते हैं जिनकी प्रेरणा से आज हम बंदियों के हक व गरिमामय जीवन के लिए गम और गुस्से का इजहार कर रहे हैं।

संतोश उपाध्याय
संपादक
बन्दी अधिकार आंदोलन

विषय–सूची

हथकड़ी	1
गिरफ्तारी	4
जमानत और रिमांड	8
कानूनी सहायता	15
बंदीगृह सुविधाएँ	18
औरतें	22
किशोर बंदी	27
यातना	35
निष्पक्ष प्रक्रिया	41
पैरोल	45
प्रेस	50

हथकड़ी

सर्वोच्च न्यायालय और विभिन्न उच्च न्यायालयों के हथकड़ियों से जुड़े बहुत से फैसलों के बावजूद भी पुलिस अब भी हथकड़ियों और रस्सियों का बिना कोर्ट की इजाज़त के प्रयोग कर रही है।

प्रेम शंकर शुक्ला (1980 Cri LJ 930) का मामला स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि सर्वोच्च न्यायालय के फैसलों का जेल प्रशासन पर व्यवहारिक असर बिल्कुल नहीं होता और सर्वोच्च न्यायालय के निर्देशों का अनादर दंड मुक्त रहता है। सुनील बत्रा के मामले में फैसले के बावजूद हथकड़ियों का प्रयोग होता था, ज़्यादातर की अभियोगाधीन बंदियों को न्यायालय ले जाने के समय।

न्यायालय ने कहा कि हथकड़ियों का प्रयोग आंतरिक रूप से अमानवीय है और एक व्यक्ति की गरिमा को अपमानित करता है, जैसे वह गरिमा संविधान के अनुच्छेद 21 के अन्दर संरक्षित है।

अल्तमेश रेन, वकील बनाम भारतीय संघ और अन्य (1988) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने भारतीय संघ को आदेश दिया कि वह तीन महीनों के अंदर हथकड़ियों के प्रयोग को लेकर प्रेमशंकर शुक्ला के सिद्धांतों के अनुसार दिशानिर्देशों का एक पूर्ण सेट जारी करे, और सभी राज्यों और क्षेत्रों की सरकारों में परिचालित करे।

महाराष्ट्र राज्य और अन्य बनाम रविकांत एस. पाटिल (1991) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि एक पुलिस अफसर का एक हिरासत में बंद व्यक्ति को हथकड़ी लगाकर, उसकी बाहें रस्सी से बांधकर उसे सड़कों पर घुमाना संविधान के अनुच्छेद 21 का उल्लंघन है। तथापि, न्यायालय ने कहा कि महाराष्ट्र राज्य को उस बंदी को रु.10,000 का मुआवजा देना होगा न कि उस पुलिस अफसर को, और कहा कि उस

अफसर के सर्विस रिकॉर्ड में यह प्रविष्टि कि उसने संविधान के अनुच्छेद 21 का उल्लंघन किया है उस अफसर को एक उचित जांच में सुनने के बाद ही की जा सकती है।

लोकतंत्र के लिए नागरिक, अपने अध्यक्ष द्वारा बनाम असम राज्य और अन्य (1995) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने सात बंदियों मामले पर विचार किया जो कि आतंकवाद संबंधित अपराधों के आरोपी थे और जिन्हें अपने अस्पताल के बिस्तर से हथकड़ी से बाँधा गया था बावजूद इसके कि उनके कमरे पर ताला लगा था, खिड़कियों पर सलाखें थीं और कमरा सशस्त्र पहरेदारों से घिरा हुआ था। न्यायालय ने कहा कि बंदियों को सीमित करने के लिए विचारे जाने योग्य कारण हैं : उनके भागने की संभावना या कोई हिंसक कार्य करने की संभावना जिसे बंदी के "चरित्र, पूर्ववृत्ता और प्रवृत्ति" से नापा गया हो, और कारण जैसे दंड का स्वरूप व अवधि, दोषसिद्धियों की संख्या, अथवा आरोपों का स्वरूप फैसला लेने के लिए आंतरिक रूप से नहीं जुड़े हैं। कानून को तथ्यों पर लागू करते हुए, न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि सीमाएं (हथकड़ियों और रस्सीयों की) अनुचित थी क्योंकि ऐसा कोई तार्किक आधार नहीं था जिससे निष्कर्ष निकाला जाए कि बंदियों के भागने अथवा हिंसक कार्य करने की संभावना है।

एम.पी. द्विवेदी और अन्य (1996) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने मध्य प्रदेश राज्य की अपने पुलिस नियमों को हथकड़ी लगाने के सिद्धांतों, जो कि प्रेम शंकर शुक्ला के मामले में स्थापित किए गए थे, के अनुरूप न बनाने पर आलोचना की, और उसे ऐसा शीघ्र रूप से करने का आदेश दिया। न्यायालय ने यह भी पाया कि एक अफसर हथकडियों के उचित प्रयोग पर मौजूदा पुलिस नियमों के उल्लंघन का दोषी था, यद्यपि न्यायालय ने उसकी युवा उम्र की वजह से उसे सज़ा देने से मना कर दिया।

आर.पी. बघेला बनाम गुजरात राज्य और अन्य (2002) के मामले में, गुजरात उच्च न्यायालय ने यह माना कि किसी भी न्यायालय को,

न कि केवल सर्वोच्च न्यायालय को, प्रेम शंकर शुक्ला के सिद्धांतों की अवहेलना करने के जूर्म पर हस्तक्षेप का अधिकार है और उसे न्यायालय की मानहानि जैसे देखने का अधिकार है। तथापि, मामले के तथ्यों के संदर्भ में, न्यायालय ने माना कि किसी बंदी को हथकड़ी लगाने का पुलिस अफसर का फैसला, जो कि जूर्म की गंभीरता पर और अफसर की बंदी के "व्यवहार, आचरण और भागने की संभावना" के बारे में अवलोकनाओं पर आधारित हो, उचित था।

गिरफ्तारी

प्रवर्तन निदेशालय बनाम दीपक महाजन और अन्य (1994) सुप्रीम कोर्ट ने यह फेसला सुनाया कि जाक अधिकारी व मजिस्टेट विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम और सीमा शुल्क अधिनियम के तहत कार्य करते है उनके पास उसी तरह के अधिकार है जो आपराधिक प्रक्रिया संहिता के तहत अधिकारियों व मजिस्टेट के पास है। इस व्याखा के होते हुए भी यह भी कहा है कि संवैधानिक संरक्षण के विरुद्व है जो उन ही व्यक्तियों पर लागू है जिनके उपर आपराधिक प्रक्रिया संहिता के तहत आपरोप लगा है। और नउ व्यक्तियों पर लागू नही है जिनके उपर विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम के तहत और सीमा शुल्क अधिनियम के तहत आरोप लगा है और उन व्यक्तियों पर लागू नही है जो जिनके उपर विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम के तहत और सीमा शुल्क अधिनियम का आरोप लगा है। यह एक ऐसी स्थिति है जिसमें एक व्यक्ति जिसके उपर इन अपराधों का आरोप लगा है लेकिन वह सवैंधानिक संरक्षण के हकदार नही है।

मनमानी गिरफ्तारी भारत की आपराधिक न्याय प्रणाली की सबसे गंभीर समस्याओं में से एक है। जोनिन्दर कुमार बनाम राज्य जो एक वकील की अवैध रुप से पुलिस स्टेशन के हिरासत और 5 दिन के पूछताछ से संबधित है, सुप्रीम कोर्ट ने राष्टीस पुलिस आयोग द्वारा एक रिपोर्ट का हवाला दिया है कि अनुमानित लगभग 60 प्रतिशत गिरफ्तारी अनावश्यक व अनुचित थी। यह गिरफतारिया न केवल आर्थिक बोझ थे बल्कि नजरबंदी व्यवस्था के कुल व्यय का 43 प्रतिशत से अधिक प्रतिनिधित्व किया और पुलिस के दुरुप्योग के लिए राह भी बनाई। अदालत ने कहा कि पुलिस अधिकारियों को गिरफ्तारी व व्यक्तियें को तब हिरासत में लेना चाहिए जब उनके परस उचित कारण हों कि यह गिरफ्तारी आवश्यक व उचित थी। इसके अलावा अदालत ने स्पष्ट किया है कि गिरफ्तार व्यक्ति

को यह अधिकार है कि वह एक व्यक्ति को अपनी गिरफ्तारी व नजरबंदी के बारें में सूचित कर सकें। पुलिस अधिकारी को गिरफ्तार व्यक्ति को उसके अधिकार के बारें में सूचित करना चाहिए और मजिस्टेट के संज्ञान में लाना चाहिए कि सभी जरुरी बातों को ध्यान रखा गया है।

डी. के. बासु बनाम पश्चिम बंगाल के केस में गिरफ्तारी व कैद व गिरफ्तारी के मुद्दे पर विस्तार से बात की गई है। सुप्रीम कोर्ट ने मनमानी गिरफ्तारी, अवैध रुप से हिरासत और मृत्यु सहित हिरासम में हिंसा सहित पुलिस अधिकार के दुरुप्योग संबधित विभिन्न मुद्दों की जांच की है।

गिरफ्तारी का अवधारणा के लिए विशेष संदर्भ के साथ, अदालत ने कहा है कि हिरासत में हिंसा को कम करने के लिए सही रास्ता गिरफ्तारी को कम करन से हागा और खासतौर पर गिरफ्तारी को समाप्त करने सें। ज्यादातर गिरफ्तार लोगो से जानकारी निकालने के लिए यातना या हिंसा का प्रयोग किया जाता है।

अदालत ने गिरफ्तारी के संबध में निम्नलिखित दिशानिर्देश दिये हैः

1. पुलिस अधिकारियों जो गिरफ्तारी व जांच कर रहा है वह सही, प्रकट व स्पष्ट पहचान और पद को नाम के सहित लगायेगा। जो पुलिस अधिकारी गिरफ्तारी की जांच कर रहा है वह यह सब जानकारी एक रजिस्टर्ड में भी रिकोर्ड करेगा।
2. जो पुलिस अधिकारी गिरफ्तारी कर रहें है उन्हें गिरफ्तारी के समय एक ज्ञापन देना होगा जो कम से कम एक गवाह द्वारा सत्यापित किया जाए, वह गवाह गिरफ्तार व्यक्ति के परिवार से या उस समुदाय का सम्मानित व्यक्ति होना चाहिए, जहां से गिरफ्तारी की जा रही है। यह ज्ञापन में समय व तिथि दी हो साथ ही यह गिरफ्तार व्यक्ति के द्वारा प्रतिहस्ताक्षरित होना चाहिए।
3. ऐसा व्यक्ति जिसे गिरफ्तार किया जा रहा है या पुलिस हिरासत में है या पूछताछ केंद्र में हो, उनके कोई एक साथी या परिवार को

साथ में रहना चाहिए या उनके किसी शुभचिंतक को गिरफ्तारी के बारें में समय व स्थान की जानकारी चाहिए। जिस गवाह ने गिरफ्तारी ज्ञापन पर हस्ताक्षर कियें है वह भी दोस्त या रिश्तेदार हो सकता है।

4. गिरफ्तारी का समय और स्थान हिरासत के सिल के बारें में पुलिस अधिकारियों द्वारा गिरफ्तार व्यक्ति के दोस्त या रिश्तेदार को 8 से 12 घंटें के अंदर देनी चाहिए और यह कि गिरफ्तारी के बाद संबधित क्षेत्र के जिला और पुलिस स्टेशन में कानूनी सहायता संगब्न के माध्यम से जिले या शहर के बाहर मित्र या रिश्तेदार को सूचित किया जाना चाहिए।
5. गिरफ्तार किये गये व्यक्ति को यह सूचना दी जानी चाहिए कि यह उसका अधिकार है कि वह अपने संबधित किसी को भी अपनी गिरफ्तारी के बारें में सूचित कर सकें।
6. गिरफ्तार व्यक्ति के बारें में हिरासत के स्थान पर ही एक डायरी में प्रविष्टि की जाए जिसमें मित्र व पुलिस अधिकारियों का नाम भी होना चाहिए।
7. गिरफ्तार के समय गिरफ्तार व्यक्ति के शरीर में मुख्य व मामूली घावों की जांच की जानी चाहिए और उसे दर्ज भी करना चाहिए। निरिक्षण ज्ञापन पर गिरफ्तार व्यक्ति और पुलिस अधिकारी का हस्ताक्षर होना चाहिए और इसकी प्रतिलिपी गिंरफतार व्यक्ति को देनी चाहिए।
8. गिरफ्तार व्यक्ति को हर 48 घंटें में एक प्रशिक्षित चिकित्सक द्वारा चिकित्सा परीक्षा के अधीन किया जाना चाहिए। परीक्षा के लिए अनुमोदित निदेशक संघ राज्य की स्वास्थ्य सेवाओं द्वारा नियुक्त डाक्टरो के पालन पर हिरासत के दौरान अधीन किया जाना चाहिए।
9. गिरफ्तारी के ज्ञापन प्रतिपिलि को क्षेत्र के मजिस्टेट के पास देना चाहिए।

10. पुछताछ के समय गिरफ्तार व्यक्ति को अपने वकील से मिलने की अनुमति दी जा सकती है लेकिन पूरे समय के लिए नही ।
11. गिरफ्तारी के 12 घंटों के भीतर सभी जिलों व राज्य में हुई गिरफ्तारी की सूचना पुलिस कंटोल को दी जानी चाहिए साथ ही यह सूचना एक सूचना बोर्ड पर लगाई जानी चाहिए।

अदालत ने यह भी कहा है कि पुलिस इन बातों का पालन करने में विफल हो जाती है तो उन्हें इसके बारें में कोर्ट की अवमानना के लिए जिम्मेदार माना जाएगा। साथ ही अनावश्यक गिरफ्तार व्यक्ति को इसके लिए भुगतान भी दिया जाएगा।

अमरिक सिंह बनाम पंजाब राज्य व अन्य में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय ने एक ऐतिहासिक निर्णय में सत्र जजों को यह आदेश दिया है कि वह पुलिस स्टेशन में अचानक निरिक्षण करें। निर्णय में यह भी कहा गया है कि व्यक्ति को गिरफ्तारी के समय तुरंत ही गिरफ्तार होने का कारण बताया जाए।

राजकुमारी और अन्य बनाम एस.एच.ओ. नोएडा और अन्य 2006 में संप्रीम कोर्ट ने एक औरत के दावे पर गोर किया है कि पुलिस उचित गिरफ्तारी प्रकिसा का उल्लघंन करते है। जैसे जोगेन्दर कुमार (SUPRA) और डी.के. बासु (SUPRA) में निर्देशित है। हालांकि कोर्ट ने पुष्टि की है कि अदालतों को उचित गिरफ्तारी प्रक्रियाओं को बनाये रखना चाहिए, लेकिन सबूत की कमी के आधार पर महिला के दावे को खंडन कर दिया।

जमानत और रिमांड

मुफ्त कानूनी सहायता समिति बनाम बिहार राज्य में, यह अदालत के समक्ष लाया गया था कि जमानत पर रिहा व्यक्तियों को अदालत के समक्ष उपस्थित होने के लिए कहा जाता है। जबकि 14 दिनों में भी जब जांच लंबित है और आरोप पत्र नहीं दाखिल किया गया है। सुप्रीम कोर्ट ने आदेश दिया कि इस तरीके का प्रैक्टिस गलत था और इससे मुल्जिम का अनावाश्यक उत्पीड़न होता है।

आर. के. नाबाचन्द्रा सिंह बनाम मणिपुर प्रशासन में (1964), मणिपुर उच्च न्यायालय ने यह निर्देश दिया कि आपराधिक आचार संहिता का अनुच्छेद 60 और 61 यह नहीं कहता है कि पुलिस 24 घंटे से ज्यादा मजिस्ट्रेट के सामने अभियुक्त को बगैर उपस्थित किये नहीं रख सकती है। यह आदेश दिया कि अभियुक्त को गिरफ्तार करके रखना गलत था। उसको दर्खास्त देने के बाद जमानत पर छोड़ दिया जाय। न्यायालय ने आगे पुलिस और सत्र न्यायालय की भी आलोचना की और कहा कि ये दोनों अधिकारी अपने कर्तब्य का निर्वाहन करने में सफल नहीं रहे हैं। अभियुक्त को अनुचित प्रक्रिया से न्याय दिलाने में भी असफल रहे।

गुडीकांति नरसिम्हुला और अन्य बनाम मसार्वजनिक अभियोजक एपी (1978) में, सर्वोच्च न्यायालय ने ऐसे जमानत याचिकाओं पर विचार किया जिनमें या तो अभियुक्त दोषी होता है या फिर बाइजत रिहा कर दिया जाता है और केस अपील में चल रहा होता है। अदालत ने निर्णय दिया कि यह महत्वपूर्ण सवाल इस बात से पुष्ट होगा कि अपराध कितना गंभीर है और साक्ष्य कितना अभियुक्त के खिलाफ है। सजा की अवधि कितनी है, और कुछ निश्चित तरह के अपराध जिनमें बेल दी जाती है। अगर ये महत्वपूर्ण दहलीज पार कर ली जाती है तो उसके बाद न्यायालय को अन्य तथ्यों पर विचार करना चाहिए।

बाबू सिंह और दूसरों बनाम उत्तर प्रदेश की राज्य (1978), सर्वोच्च न्यायालय ने उन छह लोगों की जमानत याचिकाओं पर विचार किया जो मर्डर के केस में अभियुक्त थे। लेकिन बाइजत बरी कर दिये गये थे। उनका केस अपील में चल रहा था। अदालत ने निर्णय दिया कि एक लचीला दृष्टिकोण से देखा जाय तो इन केसों में न्यायालय को विचार करना चाहिए था। जिन पर हत्या का आरोप लगा है वे सब एकही परिवार के थे। वेलोग 20 महिने से बंदीगृह में रह रहे थे, जबसे उनका केस चल रहा था। उसके बाद यह निर्णय लिया कि जबसे अभियुक्त बरी हुये थे। उसके पांच साल तक किसी भी तरह की समस्या नहीं हुयी थी, न ही उनके खिलाफ कोई केस था। हालांकि न्यायालय ने कुछ शर्ते रखी जिसके अनुसार अभियुक्तों को उस गांव में जाने पर रोक लगा दिया गया जहां पर जातीय झगड़े बढ़ सकते थे। अभियुक्तों को यह भी आदेश दिया गया कि वो अपने स्थानीय पुलिस थाने में समय–समय पर अपनी हाजिरी लगाते रहेंगे।

मिस हर्ष साहनी बनाम संघ राज्य क्षेत्र (1978), न्यायालय ने एक महिला अभियुक्त को जमानत दे दी। इसके बावजूद कि पुलिस ने यह न्यायालय से यह गुजारिश की थी कि महिला अभियुक्त को कस्टडी में रखा जाय। क्योंकि पुलिस ने पहले ही उसके घर की तलाशी ले ली थी। और उससे सवाल–जवाब भी कर लिया था।

मोती राम बनाम में मध्य प्रदेश राज्य (1979), सुप्रीम कोर्ट ने तीन कानूनी जमानत से संबंधित मुद्दों पर विचार किया. पहले यह माना जाता है कि एक अदालत ने एक व्यक्ति को एक गैर–जमानती अपराध है जो परीक्षण का इंतजार कर रहा है या जो अपील की है या की मांग की विशेष छुट्टी का आरोप लगाया sureti मे बिना जमानत अनुदान सकता है. अदालत आयोजित की है कि कानून के रूप में पारंपरिक रूप से पढ़ने के एक बेतुका स्थिति में हत्या जैसे जघन्य अपराध के दोषी व्यक्ति जमानत पर बाहर दे सकता है जब कि एक व्यक्ति को एक कम अपराध के आरोप जमानत से इनकार किया जा सकता है अगर वह ध्नतमजप

मे बिना बनाया वह sureti मे नहीं था. अदालत इसलिए जमानत की एक व्यापक व्याख्या को अपना या sureti मे बिना एक व्यक्ति की रिहाई शामिल हैं. दूसरी अदालत ने जमानत का एक उचित मात्रा बढ़ाता में मापदंड माना जाता है. जबकि अदालत ने महान विस्तार में इस मुद्दे पर विचार नहीं किया, यह रुपये से वर्तमान मामले में आवश्यक राशि कम है. 10000 रुपये. 1000 के आधार पर कि आरोपी निर्धन मजदूर था और यह अन्यथा उसे जमानत से इनकार करते हैं क्योंकि वह केवल धन जुटाने में असमर्थ था कि. तीसरे, अदालत माना जाता है कि क्या यह एक प्रतिभूअ स्वीकार शक्ति थी क्यों कि उसका/उसकी संपत्ति एक अलग जिला या राज्य में है. इस अदालत व्यापक यह है कि भारत एक एकीकृत देश था और कहीं भी देश में रहते हैं सकता है कि sureti मे व्याख्या खारिज कर दिया.

सात खातून Hussainara बनाम गृह सचिव, बिहार (1980) के राज्य से जुड़े मामलों में, सुप्रीम कोर्ट लोगों के मुद्दे पर जो परीक्षण का इंतजार करते हुए कैद थे, कभी कभी कई वर्षों के लिए, और जो के खाते पर जमानत से वंचित थे (एक माना जाता है) उनके लिए इसे बर्दाश्त अक्षमता, या (ख) जानते हुए भी कि इस तरह के एक विकल्प भी उन्हें करने के लिए अस्तित्व की अपनी अज्ञानता अदालत ने ध्यान देने योग्य बात है कि एक जमानत प्रणाली highely असंतोषजनक था अगर यह मान लिया है कि न्याय से भागने के खिलाफ केवल निवारक मौद्रिक नुकसान के जोखिम से शुरू हुआ, और यह ध्यान देने योग्य बात है कि इस प्रणाली गरीबों की आय से अधिक कारावास की नेतृत्व द्वारा जारी रखा. अदालत आयोजित की है कि निम्नलिखित कारकों को ध्यान में रखा जाना चाहिए जब जमानत अनुप्रयोगों का आकलनः

1. समुदाय में निवास की लंबाई
2. रोजगार की स्थिति, इतिहास और वित्तीय स्थिति
3. परिवार के संबंधों और रिश्तों
4. प्रतिष्ठा, चरित्र, और मौद्रिक स्थिति

5. स्वीकरन पर या जमानत पर पूर्व रिहाई के किसी भी रिकॉर्ड सहित पूर्व आपराधिक रिकॉर्ड
6. जो विश्वसनीयता के लिए जमानत होता समुदाय के विश्वसनीय सदस्य की पहचान
7. अपराध की प्रकृति का आरोप लगाया और में विश्वास की स्पष्ट संभावना है और संभावना वाक्य अब तक के रूप में इन कारकों गैर उपस्थिति के जोखिम के लिए प्रासंगिक हैं और
8. किसी भी अन्य कारकों खुद राय प्रकट करने के लिए विफलता के जोखिम पर समुदाय या सहन करने का आरोप लगाया संबंधों का संकेत.

अदालत ने निष्कर्ष निकाला है कि अगर एक अदालत संतुष्ट हो जाता है कि एक अभियुक्त समुदाय में जड़ें है और फरार करने की संभावना नहीं है, वह या वह निजी मुचलके पर रिहा किया जाना चाहिए समझ है कि एक त्वरित परीक्षण करने के लिए उम्मीद की जानी है के साथ.

इन मामलों में भी महत्वपूर्ण है क्योंकि सुप्रीम कोर्ट से लागू संविधान के अनुच्छेद 39ए, जो जनादेश राज्य योग्य व्यक्तियों को कानूनी सहायता प्रदान करने के लिए.

समुंदर सिंह बनाम राज्य राजस्थान और दूसरों (1987) में, अदालत ने पाया कि निचली अदालत कवूमतल मौत में एक अभियुक्त व्यक्ति को अग्रिम जमानत देने के कारण ऐसी जमानत अनुदान नहीं के रूप में अपराध की गंभीरता का हवाला देते हुए में गलती. अदालत ने कहा कि इस चेतावनी भविष्य अदालतों द्वारा ध्यान किया जाना चाहिए जब इस तरह के मुद्दों के जवाब.

पी. वेंकट सुब्रमण्यम के मामले में मद्रास उच्च न्यायालय कैदियों जिसका रिमांड के लिए उन्हें अदालत में उत्पादन के बिना लिया गया था की जमानत पर रिहाई का आदेश दिया.हालांकि मद्रास प्रेसीडेंसी जेल यह राज्य और पॉन्डीचौरी के अन्य भागों के लिए बढ़ा दी गई है के संबंध में याचिका दायर किया गया था.

जसवंत सिंह और उत्तर प्रदेश के राज्य (1988) बनाम दूसरों में, अदालत ने पाया कि एक निचली अदालत आधार है कि आरोपी सिखथे पर जमानत अनुप्रयोगों को अस्वीकार कर दिया था. अदालत ने फैसला सुनाया कि यह न्याय का गर्भपात था और आवेदन पर पुनर्विचार करने के लिए निचली अदालत का आदेश दिया.

जांच विशेष जांच से ल1, नई दिल्ली बनाम केंद्रीय ब्यूरा में. अनुपम जे कुलकर्णी (1992), सुप्रीम कोर्ट परिस्थितियों में रिमांड दी जाना चाहिए माना जाता है. आरोपियों को पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया गया और न्यायिक हिरासत में रखा. हालांकि उसे पुलिस हिरासत में स्थानांतरित करने का आवेदन दिया गया था, आरोपियों को सीने में दर्द की शिकायत की और अस्पताल ले जाया गया था. 18 दिनों के बाद वह वापस न्यायिक हिरासत में लाया गया था, और उसे पुलिस हिरासत में डाल दिया आवेदन से इनकार कर दिया था, मुद्दा था कि क्या अभियुक्त को सप्रमाण अधिक से अधिक 15 दिनों की गिरफ्तारी के बाद पुलिस हिरासत में रखा जा सकता है. अपील खारिज, अदालत ने फैसला सुनाया कि इस समय अवधि के गिरफ्तारी के समय पर शुरू होता है और 15 दिन के अंत में समाप्त हो, और यह है कि पुलिस किसी भी अवधि के लिए किसी को रोकेंगे के बाद इन 15 दिनों की समयावधि समाप्त हो गई है सही है तर्क खारिज कर दिया.

असलम बाबू लाल देसाई बनाम राज्य महाराष्ट्र (1993) में, अदालत ने माना जाता है कि पिसनतम के लिए प्रदान करने के लिए निर्धारित समय के भीतर जांच पूरी उप 167 आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा (2) के अनुसार जमानत हो सकता है का सवाल आरोप पत्र के बाद प्रस्तुति पर रद्द कर दिया.अदालत ने कहा कि जमानत की इन परिस्थितियों में एक व्यक्तिके लिए देने के लिए कोड के 437 अनुभाग और 439 के तहत जमानत देने के बराबर है. इसलिए इन प्रावधानों को भी जमानत के निरसन सरकार. अदालत ने रघुवीरे पद ही मामला(AIR 1987149 अनुसूचित जाति) से उद्धृत करने के लिए है कि 437 खंड (1) के तहत

जमानत या (2) या+ 39(1) रद्द किया जा सकता है अगर एक अभियुक्त व्यक्ति पकड़रू

1. इसी तरह की आपराधिक गतिविधियों में लिप्त द्वारा उस की स्वतंत्रता का दुरुपयोग
2. जांच के पाठ्यक्रम के साथ हस्तक्षेप
3. सबूत या गवाह के साथ छेड़छाड़ करने का प्रयास
4. गवाहों का खतरा है या इसी तरह की गतिविधियों जो चिकनी जांच में बाधा होगा भोगता
5. किसी दूसरे देश के लिए पलायन की संभावना है
6. भूमिगत जा रहा है या जांच एजेंसी के लिए अनुपलब्ध बनने से खुद दुर्लभ बनाने के प्रयास
7. खुद को उसकी जमानत आदि संपूर्ण की पहुंच से परे जगह का प्रयास करता है.

अदालत में स्पष्ट किया कि जमानत पलट करने के लिए सीमा पहले उदाहरण में जमानत देने से इनकार करने के लिए सीमा की तुलना में अधिक है, भगीरथ गुजरात सिंह जडेजा बनाम राज्य (1984) का हवाला देते हुए ऊपर प्रगणित जी वे जैसे कि बहुत ठोस और भारी परिस्थितियों पकड़, जरूर मौजूद रहना चाहिये. वर्तमान मामले के तथ्यों को कानून लागू करने, अदालत ने फैसला सुनाया कि जमानत अभियुक्त दी रद्द नहीं किया जा सकता है सिर्फ इसलिए कि पुलिस बाद में एक गैर जमानती अपराध एक या एक से अधिक ऊपर सूचीबद्ध शर्तों के कमीशन का आरोप लगाते हुए एक आरोप पत्र दायर भी मौजूद करने के लिए की आवश्यकता होगी.

राज्य उड़ीसा बनाम विजय मोहंती (1993), अदालत आयोजित की है कि कानून लागू करने वाली एजेंसी और एजेंसी कानून का उल्लंघन करने का हिस्सा नहीं बन सकता

Saibolbowcassama बनाम में. भारत और अन्य के संघ (1994)

बॉम्बे उच्च न्यायालय के एक व्यक्ति को एक मजिस्ट्रेट के सामने एक दवा अपराध के बाद हिरासत में लिया जा रहा है, के रूप में कानून के तहत जरूरी 24 घंटे के भीतर आरोप लाने में नाकाम रहने के लिए सीमा शुल्क अधिकारियों को फटकार भी लगाई. अदालत ने आदेश दिया आरोपी जमानत पर रिहा किया लेकिन यह भी कहा कि एक प्रक्रियात्मक अनियमितता अभियुक्त की अंतिम परीक्षण नहीं दूषित करना होगा.

शंकर और अन्य बनाम राज्य (दिल्ली प्रशासन) में (1995), दिल्ली उच्च न्यायालय के परीक्षण के अंतर्गत निर्धन की रिहाई जोजमानत आदेश राज्य के बावजूद जारी है कि अगर सार्वजनिक न्याय करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है, यांत्रिक हिरासत विस्फोट किया जाना चाहिए नहीं हो सकता है का निर्देशन किया.

इसी सिद्धांत के परीक्षण के तहत बड़ी संख्या में रिमांड जिसका आदेश मद्रास उच्च न्यायालयद्वाराउनकी अनुपस्थिति में पी. वेंकटसुब्रह्मण्यम मामले में प्राप्त जारी करने के लिए लागू किया गया था

भारत बनाम संघ में. जी ंउपेींतेंप और दूसरों को और खुफिया अधिकारी नारकोटिक्स नियंत्रण ब्यूरो बनाम. आरिफ पटेल (1995), के मुद्दे पर सुप्रीम कोर्ट ने फैसला सुनाया कि नशीली दवाओं और मादक पदार्थों में उपबंध अधिनियम आपराधिक प्रक्रिया कोड में प्रावधानों के एक अभियुक्त जारी निरोध जो एक आरोप पत्र के साथ प्रदान की जाती है के बारे में रह. अदालत ने पाया कि वे हिस्से में ऐसा करते हैं. एन डी पी एस पर जिम्मेदारी रखने के प्रावधान के लिए उसके ध्उस की मासूमियत दिखा जब जमानत का अनुरोध आरोप लगाते आपराधिक प्रक्रिया को डअभियोजन पर इस जिम्मेदारी को रखने के अपराध को दिखाने के प्रावधानों का स्थान लेता है अभियुक्त जब जमानत अनुरोध के / लेकिन एनडीपीएस अधिनियम नहीं व्यक्त विस्तार प्रावधानों में शामिल आपराधिक प्रक्रिया को ड में सौंपा समय से परे एक और आरोप पत्र की प्राप्ति के बिना हिरासत का समय है. ऐसे मामलों में, एक मुलजिमों के लिए आपराधिक प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों को लागू करने के हकदार।

कानूनी सहायता

मुफ्त कानूनी सहायता, उन्हें जिन्हें इसकी ज़रूरत है, का प्रावधान संविधान के दो अनुच्छेदों में बसा है। पहला, भारतीय संविधान अनुच्छेद 39(क) जो कि स्पष्ट रूप से कहता है, "राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि विधिक तंत्र इस प्रकार काम करे कि समान अवसर के आधार पर न्याय सुलभ हो और वह, विशिष्टतया, यह सुनिश्चित करने के लिए कि आर्थिक या किसी अन्य निर्योग्यता के कारण कोई नागरिक न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित न रह जाए, उपयुक्त विधान या स्कीम द्वारा या किसी अन्य रीति से निःशुल्क विधिक सहायता की व्यवस्था करेगा।" दूसरा, भारतीय संविधान का अनुच्छेद 21 कहता है कि "किसी व्यक्ति को उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जाएगा, अन्यथा नहीं", और न्यायालयों ने समय के साथ इस विस्तृत प्रावधान के अंतर्गत "विधिक सहायता" (यानी कानूनी सहायता) को सम्मिलित किया है।

रनछोड़ माथुर वसावा बनाम गुजरात राज्य (1974) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि "दरिद्रता निष्पक्ष सुनवाई और समान न्याय से वंचित रखने का आधार कभी नहीं होना चाहिए"। यद्यपि न्यायालय ने एक बंदी की याचिका अस्वीकार कर दी क्योंकि वह बंदी वकील कर पाया था और उस वकील के पास बंदी का प्रतिनिधित्व करने का पर्याप्त समय था, फिर भी न्यायालय ने अपनी भावना व्यक्त करते हुए कहा कि कानूनी प्रतिनिधित्व तक पहुँच किसी भी उस मामले में जिसमें प्राण या दैहिक स्वतंत्रता दाव पर हो। कानून के शासन का एक मौलिक लक्षण है।

हरिशंकर रस्तोगी (AIR 1978 SC 1019) के मामले में याचक स्वयं प्रस्तुंत हुआ और किसी ऐसे व्यक्ति जो कि वकील न हो उसके द्वारा प्रतिनिधित्व की मांग करने लगा। हालांकि सामान्य परिस्थितियों में इसकी अनुमति नहीं दी जानी चाहिए किंतु कुछ मामलों में पक्षों को चुने हुए

दोस्तों द्वारा प्रतिनिधित्व करने दिया जा सकता है।

होसकोट के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 39(क) की व्याख्या करते हुए कहा कि इस अनुच्छेद ने राज्य के लिए मुफ्त विधिक सहायता प्रदान करना अनिवार्य कर दिया है। इसका मतलब यह नहीं है कि जूनियर वकील नियुक्त करना है। विधिक सहायता बंदी की पसंद की होनी चाहिए। बंदी को अपने अधिकारों की पूरी जानकारी दी जानी चाहिए। वकील को राज्य की तरफ से उचित वेतन मिलना चाहिए। यदि बंदी अस्वीकार करे फिर भी कुछ मामलों में विधिक सहायता देनी चाहिए। योग्य निर्णय की मुफ्त प्रतिलेख बंदियों को दी जानी चाहिए और उसे अपील दर्ज करने की सुविधा प्राप्त करवानी चाहिए।

खत्री और अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य (1981) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने उन बंदियों का केस सुना जिन्होंने पुलिस हिरासत के दौरान अन्धा किए जाने का दावा किया। हिरासत में हिंसा और मुआवजे के मुद्दों के अलावा न्यायालय ने कानूनी प्रतिनिधित्व के मुद्दे पर भी विचार किया, क्योंकि यह स्पष्ट था कि कार्यवाही के केसी भी समय अंधे किए बंदियों को कोई कानूनी प्रतिनधित्व नहीं मिला था। हुसैनारा खातून (1979) में स्थापित सिद्धांतों को लागू करते हुए न्यायालय ने राज्यों पर मुफ्त कानूनी सहायता की सुविधाएं उन लोगों को प्रदान करने, जो वित्तीय और प्रशासनिक अक्षमता का कारण बताते हैं, न कि सिर्फ ट्रायल के दौरान पर पहली बार मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत किए जाने या रिमांड किए जाने से लेकर, हर पड़ाव पर मुफ्त कानूनी सहायता की सुविधाओं का संविधानिक अधिकार लागू किया।

रंजन द्विवेदी बनाम भारतीय संघ (1983) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने शासित किया कि न्यायालयों की जिम्मेदारी है कि वे यह सुनिश्चित करें कि वकीलों को दरिद्रों का प्रतिनिधित्व करने की उचित राशि मिले। अन्यथा, दरिद्रों के लिए समर्थ पेशेवर सहायता प्राप्त करना असंभव हो जाएगा, जिसके फलस्वरूप कानूनी सहायता प्रदान करने का उद्देश्य ही कमज़ोर पड़ जाएगा।

सुक दास और दूसरा बनाम अरूणाचल प्रदेश का संघ राज्य क्षेत्र (1986) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने विधिक सहायता की संवैधानिक प्रत्याभूत के व्यावहारिक अर्थ पर विचार किया। इस मामले में, आरोपी लोग वकील वहन नहीं कर सकते थे और अभियोजक (प्रोसीक्यूशन) के गवाहों को उचित रूप से क्रौस–एग्जामिन करने में असमर्थ थे। इसकी वजह से उन्हें दो साल की कैद का दण्ड मिला। न्यायालय ने कहा कि वकील प्राप्त करने के लिए याचिका लगाने का भार व्यक्ति पर नहीं है, बल्कि यह भार मैजिस्ट्रेट पर है कि वह सुनिश्चित करे कि मुल्ज़िम का न्यायालय में पर्याप्त रूप से बचाव हो। उस मुल्ज़िम का ट्रायल इसी वजह से संविधान के उल्लंघन में पाया गया।

बंदीगृह सुविधाएँ

भारत की कुल बंदी–गृह (जेल) जनसंख्या लगभग 385,000 कैदियों की है, जिसमें औरतें और बच्चे भी शामिल हैं। इन बंदियों में से लगभग 67 %, यानि 260,000 के आसपास अभियोगाधीन बंदी हैं। भारत में जेलों का कामकाज और परिचालन बंदी–गृह अधिनियम, 1894 से शासित है, जो कि ज़्यादातर भारतीय राज्यों ने अपनाया है। राज्यों की यह सुनिश्चित करने की जिम्मेदारी है कि उनके राज्य में जेल के बंदियों को पर्याप्त सुविधाएँ उपलब्ध हों। हाल के आंकड़ों के अनुसार भारत में जेल खतरनाक रूप से भरे हुए हैं। 2010 के तीहाड़ जेल, नई दिल्ली के वार्षिक समीक्षा में कहा गया है कि इस जेल में बंदियों की संख्या 10,856 है जबकि इस जेल की अधिकृत क्षमता सिर्फ 6,500 बंदियों की है। इन भयानक परिस्थितियों में जेल अधिकारियों की बंदियों को उचित सुविधाएं आश्वस्त कराने की क्षमता पर सवाल उठते हैं। जेल सुधार पर अखिल भारतीय समिति ने, न्यायाधीश ए.एन. मुल्ला की अध्यक्षता में, 1983 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें भारत के जेलों के विभिन्न पहलुओं के विषय में कुल 658 अनुशंसाएं थीं। तब से विभिन्न समितियाँ और रिपोर्ट तैयार की गई हैं, पर भारत में जेल सुविधाओं की समीक्षा करने पर यह देखा गया है कि इन अनुशंसाओं का प्रभावी कार्यान्यवन नहीं है। जेल सुधार और सुधारक प्रशासन पर मसौदा राष्ट्र नीति, 2007 अभिनव उपायों से रहित हैं और इस नीति की विशेषताएं पिछली अनुशंसाओं का दोहराव और उनके अनुरूप हैं। इस अध्याय में शामिल मामले भारतीय जेलों में सुविधाओं के मुद्दों पर न्यायपालिका द्वारा लिए गए कदमों को दर्शाते हैं।

"जेल सुविधाएँ" और "जेल सुविधा" जैसे पारिभाषिक शब्द भारतीय साहित्य में परिभाषित नहीं हैं। हालांकि, बंदी–गृह अधिनियम, 1894 के अध्याय VI, अध्याय VII, अध्याय VIII और अध्याय IX "दीवानी और

अनापराधिक बंदियों के खाने, कपड़े और बिस्तर" से संबंध रखते हैं।

जेल सुधार वेतन की वृद्धि (AIR 1983 Ker.261) के मामले में, केरल उच्च न्यायालय एक ऐसी स्थिति से परिचित हुआ जिसमें अभियोगाधीन बंदियों को एक पूरे दिन के कठिन परिश्रम के लिए 50 पैसे से लेकर रु.1.60 दिया जाता था। न्यायालय ने शोक पूर्वक कहा कि जेल सुधार समिति कार्य नहीं कर रही।

राज्य की मजदूरी बढ़ाने से जुड़ी आपत्तियों पर न्यायाधीशों ने कहा :–

"हम नहीं सोचते कि जेल में बेहतर सलूक जूर्म करने के लिए प्रोत्साहन होगा..... और यह मान लेना अनुचित होगा कि सिर्फ़ इसलिए कि एक व्यक्ति को अच्छी तरह से खिलाया जाय और उसकी देखभाल मानवीय परिस्थितियों में की जाए.... तो वह जेल में खुश होगा।"

जिन संवैधानिक प्रश्नों का उत्तर देना था वो इस प्रकार थे :–

1. क्या दण्डित बंदी अपने काम के लिए मजदूरी की मांग कर सकता है?
2. क्या यह मजदूरी उचित होनी चाहिए न कि सिर्फ भ्रामक?
3. क्या एक न्यायालय राहत प्रदान कर सकता है?

इन तीन सवालों का सकारात्मक जवाब दिया गया। भारतीय दण्ड प्रक्रिया सिर्फ कठिन श्रम न कि मुफ्त श्रम के बारे में बोलती है। मानव अधिकारों की सार्वलौकिक घोषणा के अनुच्छेद–4 जो कहता है, "कोई भी गुलामी में आयोजित नहीं किया जाएगा," अनुच्छेद 23(1) जो कि "काम करने के अधिकार, रोजगार चुनने की आज़ादी, काम करने की उचित और अनुकूल परिस्थितियां और बेरोजगारी सुरक्षा" प्रत्याभूत करता है और अनुच्छेद 23(3) जो "वेतन के अधिकार ताकि स्वयं और परिवार का गरिमापूर्ण अस्तित्व सुनिश्चित रहे" को प्रत्याभूत करता है, पर भरोसा किया गया। नागरिक और राजनीतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा के अनुच्छेद 10(1) पर भी भरोसा किया गया जो कि घोषित करता है कि,

"स्वतंत्रता से वंचित सभी लोगों के साथ मानवता और सम्मान से व्यवहार किया जाएगा।" तदनुसार, न्यायालय ने कहा कि सभी बंदियों को न्यूनतम मजदूरी या उससे अधिक मजदूरी दी जाएगी।

गुरदेव सिंह (AIR 1992 Him. Pr. 76) के मामले में, हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय ने यह माना कि बंदियों को कानून द्वारा निर्धारित "न्यूनतम मजदूरी" से कम मजदूरी देना संविधान के अनुच्छेद 23 के अंतर्गत "बलात्श्रम" कहलाएगा। न्यायालय ने कहा कि जेल के बाहर और अंदर काम करने में कोई अंतर नहीं होना चाहिए। न्यायालय ने राज्य सरकार को आदेश भी दिया कि वह उच्च शक्ति समिति बनाए जो कि ज़्यादा खुले जेल बनाने का, पढ़ाई, व्यावसायिक प्रशिक्षण और पर्याप्त काम की सुविधाओं के बारे में विचारे, ताकि सरकार व्यापक रूप से जेल सुधार का कार्य कर सके।

आर.डी. उपाध्याय बनाम आंध्र प्रदेश और अन्य (AIR 2006 SC 1946) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने जेल में अपनी माँ के साथ रह रहे बच्चों, चाहे अभियोगाधीन बंदी या अपराधी बंदी जैसे, के विकास के बारे में विचार किया। बच्चों को बिना अपनी गलती के और बल प्रति कारण अपनी माँ के साथ जेल में रहना पड़ता है। न्यायालय ने देखा कि जेल का वातावरण बच्चों के विकास के लिए निश्चित रूप से अनुकूल नहीं है। अपराध–विज्ञान और फोरेंसिक विज्ञान के राष्ट्रीय संस्थान को एक अध्ययन करने का आदेश दिया गया जिसमें महिला बंदियों के बच्चों की उचित देखभाल के लिए कुछ सुझाव दिए गए। यह भी सुझाव दिया गया कि महिला संदिग्धों को केवल महिला पुलिस ही हिरासत में ले।

राज्य सरकारों और संघ राज्यक्षेत्रों द्वारा अध्ययन में उठाए गए मुद्दों के तहत रिपोर्ट फाइल की गईं। इन रिपोर्ट की रोशनी में, न्यायालय ने महिला बंदियों और उनके बच्चों को सुविधाएँ प्रदान करने के लिए निम्नलिखित मामलों में विस्तृत दिशानिर्देश जारी किए : गर्भावस्था, जेल में बच्चे का जन्म, महिला बंदी और उनके बच्चे, खाना, कपड़े, चिकित्सा और आश्रय, महिला बंदियों के बच्चों के लिए पढ़ाई और मनोरंजन, आहार,

आदि। तदानुसार, न्यायालय ने जेल नियम पुस्तिका और अन्य नियमों, निर्देशों को उचित रूप से तीन महीनों के अंतर्गत संशोधित करने का आदेश दिया ताकि निर्देशों का पालन हो सके।

रामा मूर्ति (AIR 1997 SC 173) के मामले में सेंट्रल जेल, बंगलोर में बंद एक बंदी ने एक पत्र द्वारा सर्वोच्च न्यायालय को बंदियों के शिकायतों जैसे कि जेल के विभिन्न अनुभागों में कठिन परिश्रम के बाद भी उचित मजदूरी से वंचित रखना, से परिचित कराया। उस पत्र में 'ना खाये जा सकने वाले खाने' और बंदियों की 'मानसिक और शारीरिक प्रताड़ना' के बारे में भी बताया गया था।

सर्वोच्च न्यायालय ने जेलों में भीड़–भाड़, ट्रायल में देरी, प्रताड़ना और दुर्व्यवहार, स्वास्थ्य और स्वच्छता की कमी, कम खाना और अपर्याप्त कपड़े, खुले जेलों का प्रबंधन, आदि जैसे मुद्दों पर अपनी टिप्पणियां दी। न्यायालय ने विभिन्न प्राधिकारियों को भारत के विधि आयोग की अठत्तरवीं रिपोर्ट को, मुल्ला समिति के सुझावों को लागू करने के, नया जेल अधिनियम और सर्व भारत जेल नियम पुस्तिका बनाने, बंदी–गृहों में शिकायत डब्बे रखने, संचार की सुविधाओं का उदारीकरण, खुले जेल बनाने, आदि के निर्देश जारी किए।

औरतें

कैदियों के उपचार के लिए संयुक्त राष्ट्र के मानक न्यूनतम नियम, 1955 है, जबकि नीचे सामान्य कैदियों के लिए लागू नियम को विशेषरूप से उल्लेख किया गया है कि लिंग के आधार पर कोई भेदभाव नहीं है और यदि महिलाओं हिरासत में लिया जाना चाहिए संस्थानों में कैद हो जाएगा, विशेष रूप से अपनी आवश्यकताओं के लिए बनाया गया है. न्यायमूर्ति कृष्ण अय्यर समिति, 1987 द्वारा तैयार किए दिशा – निर्देशों पर प्रकाश डाला है कि महिलाओं के कैदियों को मुख्य रूप से विभिन्न गाली, विशेष रूप से पर्यावरण की तरह एक जेल में एक यौन प्रकृति का हनन करने के लिए असुरक्षित है और पुलिस और जेल प्रशासन में अधिक महिला अधिकारियों की नियुक्ति की सिफारिश करने के लिए सुनिश्चित और महिला कैदियों की सुरक्षा आज की तारीख में 16 महिलाओं भारत में परिचालन कर रहे हैं और महिलाओं को जेल की कुल जनसंख्या का 4: से मिलकर बनता है.,2002–2003 महिलाओं की अधिकारिता संबंधी समिति हिरासत में महिलाओं से संबंधित मुद्दों पर ध्यान केंद्रित किया. 2003 समिति की रिपोर्ट पर एक करीब देखो पर यह स्पष्ट हो जाता है कि जमानत और अस्थायी जेलों से महिलाओं की रिहाई के रूप में इस तरह के मुद्दों की गहराई में संबोधित नहीं है. कारागार अधिनियम, 1984, पर्याप्त रूपसे महिलाओं के लिए अलग नियमों को लिख नहीं करता है. इसके अलावा, महिलाओं के शोषण सकल देश में विभिन्न जेलों में देखा गया है और यह कार्यान्वयन नीतियों का एक बहुत गंभीर संशोधन की मांग.निम्नलिखित मामले कानूनों के लिए विशेष महिला कैदियों के लिए हकदार अधिकार को समझने के लिए उपयोगी होते हैं.

1983 (20 Supreme कोर्ट के 96 प्रकरण) के शीलाबरसे मामले में, एक पत्रकार बॉम्बे सेंट्रल जेल में महिला कैदियों का साक्षात्कार किया था और बताया कि पुलिस पर हमला किया और अत्याचार महिलाओं कैदियों आरोपों कॉलेज ऑफ सोशल वर्क के निदेशक है सत्यापित.अदालत द्वारा निर्देशित जेल यात्रा और एक रिपोर्ट. उसकी रिपोर्ट से पता चला है कि वहाँ महिलाओं के लिए कोई कानूनी सहायता था, कि जेल में महिलाओं की स्थिति निराशाजनक थे और कि वकीलों को अपने सामान के कैदियों ठगा था निम्नलिखित सुझावों के प्रावधानों के बारे में.जेलों में महिलाओं को कानूनी सहायता बनाया गयारू

1. अभियोगाधीन बंदियो करने के लिए संबंधित detalis पुरुषों और महिलाओं के संबंध में अलग – अलग विवरण के साथ कानूनी सहायता समितियों के लिए भेजा जाना चाहिए.
2. Detalis दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 41 के तहत संदेह में और भी जो जो अधिक 15 दिनों के लिए जेल में थे repect में गिरफ्तार कैदियों के बारे में सुसज्जित थे.
3. सुविधाएं यात्राओं और साक्षात्कार के लिए निजी में वकीलों द्वारा प्रदान किया गया हो.
4. बंबई क्षेत्र में पुलिस केवल महिलाओं के लिए अच्छा इलाकों में पांच लॉक–अप सेट करने के लिए अलग थे. महिलापुरुष लॉक–अप lockups पर रखा जा नहीं थे.पूछताछ के लिए महिला कांस्टेबलों की उपस्थिति में ही किया जा रहे थे.
5. वारंट के बिना गिरफ्तारी लेकिन जहां तक संभव नहीं किया जा. गिरफ्तारी पर तुरंत आरोपियों को उसकी गिरफ्तारी के आधार के बारे में सूचित किया जाना चाहिए और वह तुरंत उसे सही करने के लिए जमानत के बारे में सूचित किया जाना चाहिए.
6. हर गिरफ्तारी कानूनी सहायता समितियों को सूचित किया जाना चाहिए.

7. एक महिला न्यायाधीश चाहिए lockups के लिए आश्चर्य की यात्रा के लिए नियुक्त विशेष रूपसे महिला कैदियों के हित के बाद देखने के लिए ई TOB.
8. गिरफ्तारी पर पुलिस तुरंत अभियुक्त के रिश्तेदारों और मित्रों को सूचित करना चाहिए.
9. जब अदालत में उत्पाद, मजिस्ट्रेट यातना के बारे में अभियुक्त से पूछताछ के लिए और उसे अपने अधिकार के बारे में सूचित करना चाहिए चिकित्सा परीक्षा और मुफ्त कानूनी सहायता के संबंध में, चाहिए.

महाराष्ट्र बनाम राज्य CK Jain (ऑल इंडिया रिपोर्ट 1990 सुप्रीम कोर्ट 658), को पुलिस custudy संबंधित बलात्कार.सबूत के बारे में, सुप्रीम कोर्ट ने जोर दिया कि जबतक ऐसे मामलों में अभियोजन की गवाही अविश्वसनीय था, सहयोग सामान्य रूपसे पर नहीं जोर देकर कहा जाना चाहिए. दूसरे, अनुमान करने के लिए बनाया जा सकता है कि आमतौर पर कोई महिलाओं के बलात्कार का झूठा आरोप लगाकर होता है. तीसरा, शिकायतों का निर्णय करने में देरी घातक और नहीं है काफी understanable कारणों शिकार महिलाओं के भाग पर पुलिस के खिलाफ एक शिकायत करने में देरी के लिए मौजूद हैं. जहाँ तक के रूप में वाक्य का संबंध था वहाँ उदारता के लिए कोई जगह नहीं थी, सजा अनुकरणीय होना चाहिए.

मेंरेखा है Kholkar के मामले (1995 (4) मुंबई आपराधिक 263), बंबई उच्च न्यायालय ने कहा कि अनुभाग 160 (10 आपराधिक पुलिस द्वारा किसी अन्य निवास की अपनी जगह से दूसरी जगह में परीक्षा of women पर रोक लगाने प्रक्रिया संहिता के प्रावधान अधिकार संपन्न प्रतिनिधि है और पजले कड़ाई से अनुपालन का निर्देश न्यायालय ने भी शारीरिक और मानसिक यंत्रणा के लिए शिकार करने के लिए मुआवजा से सम्मानित किया.

भारत बनाम ईसाई समुदाय कल्याण Counsil में. महाराष्ट्र (1996 (1) बम्बई 70 सीआर) की सरकार, बंबई उच्च न्यायालय को निर्देश दिया कि महिलाओं को सूर्यास्त के बाद और सूर्योदय से पहले और केवल महिला कांस्टेबल की मौजूदगी में गिरफ्तार नहीं किया जाना चाहिए.न्यायालय ने राज्य सरकार मानवअधिकारों के दुरुपयोग के लिए पुलिस जवाबदेही के लिए एक व्यापक योजना तैयार करने और महिलाबंदियों के लिए विशेष प्रावधान करने के लिए एक समिति का गठन करने के लिए निर्देशित.

आरडी Upadhyay बनाम के मामले में सुप्रीम कोर्ट. आंध्र प्रदेश और अन्य (ऑल इंडिया 2006 सुप्रीम कोर्ट के 1946 की रिपोर्ट) के राज्य के रूप में के रूप में अच्छी तरह से अपने बच्चों को जेल में गर्भवती महिलाओं के इलाज के लिए दिशानिर्देश नीचे रखी. ये शामिल हैं:

- ☐ महिलाओं की गिरफ्तारी केवल महिला अधिकारियों द्वारा किया जाना चाहिए
- ☐ जेल मैनुअल बिल की 60 (1) धारा (घ) के तहत अस्थायी या विशेष अवकाश एक पर्याप्त कारण होने कैदी को प्रदान किया जा सकता है, और जो महिलाएं गर्भवती हैं इस प्रावधान का प्रयोग कर सकते हैं.
- ☐ एक गर्भवती जेल भेजने से पहले संबंधित अधिकारियों को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि प्रश्न में जेल बच्चे को प्रसव के लिए बुनियादी सुविधाओं न्यूनतम है.
- ☐ यदि एक महिला गर्भवती हो पाया है, यह सूचित किया जाना चाहिए और महिलाओं जीू जिला सरकार समय – समय पर जांच की जानी अस्पताल की महिला विंग के लिए भेजा जाना चाहिए.
- ☐ प्रसवपूर्व, प्रसव के बाद देखभाल के रूप में अच्छी तरह से महिलाओं के सभी स्त्रीरोगों परीक्षाओं जिला सरकारी अस्पताल में आयोजित किया जाएगा.

- ☐ जहाँ तक संभव व्यवस्था के रूपमें अस्थायी या महिलाओं की रिहाई के पैरोल की उसकी delivery for दोनों माँ और बच्चे की सुरक्षा के लिए बनाया जाना चाहिए.
- ☐ जेल में Birhts के स्थानीय जन्म registeration कार्यालय में पंजीकृत होना होगा.यह है कि बच्चे को जेल में पैदा हुआ था उल्लेख नहीं किया जाना चाहिए.
- ☐ नामकरण संस्कार के लिए सभी सुविधाओं को बढ़ाया जाना चाहिए।

किशोर बंदी

किशोर न्याय (देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2000 हालांकि पुलिस या एक खोजी अधिकार की हिरासत में किशोरों के अधिकारों की रक्षा की दिशा में एक सकारात्मक भारतीय विधायिका द्वारा उठाए गए कदम था, अभी तक अधिनियम की विशेषताओं के लिए कुल संरक्षण को सुनिश्चित करने में विफल रहा है बाल अपराधियों. किशोर अपराधियों को 18 से कम उम्र के व्यक्ति हैं और अपराधों के लिए दोषी ठहराया गया है. इन नाबालिगों को आम तौर पर कोबोर्स्टल स्कूल जा विशेष रूप से उनके लिए डिजाइन कर रहे हैं ताकि उन्हें गाली के विभिन्न रूपों के लिए प्रवण जा रहा है की किसी भी संभावना से बचने के लिए भेजा जाता है. भारत में दस ऐसे स्कूलों की कुल संख्या में हैं. भारत में राज्यों के अधिकांश विशेष कानूनों को पारित कर दिया है करने के लिए सुनिश्चित करें कि संस्थानों जहां किशोरों आयोजित कर रहे हैं एक सुधारात्मक और शैक्षिक प्रकृति के हैं. विश्वसनीय आंकड़े के अनुसार किशोरों नाबालिगों ध्युवा कैदियों भारत में जेल की आबादी का 0.1: से मिलकर बनता है.

उनके लिबर्टी, 1990 के वंचित किशोरों के संरक्षण के लिए संयुक्त राष्ट्र के नियमों में अंतरराष्ट्रीय मानकों बाल अपराधियों के लिए रूपरेखा बना रहे हैं. संयुक्त राष्ट्र द्वारा निर्धारित नियमों के कठोर और जेलों का संचालन वातावरण से किशोरों की रक्षा के लिए डिजाइन किया गया है. मामलों नीचे उल्लेख जेलों में किशोरों की रक्षा के लिए न्यायपालिका द्वारा निर्धारित सिद्धांतों दिखा ..

परीक्षण के तहत किशोर संजय सूरी याचिका (1988 एयर 414 अनुसूचित जाति) के विषय थे. कई बच्चों को बच्चों के अधिनियम में निषेध के बावजूद जेल भेजा गया था. किशोरों के साथ जो उन्हें इतनजंसप्रमक और उन्हें गठन साफ पकाना और अन्य अरुचिकर कार्य करने के अभ्यस्त और अन्य वयस्कों के साथ रखा गया था.

कोर्ट निरोध का वारंट जारी करने के लिए हिरासत में लिया और जेल अधिकारियों को सम्मानित करने के लिए वारंट इंकार कर दिया जब तक कि उम्र के इस प्रकार में प्रवेश किया है के लिए अधिकृत व्यक्ति की उम्र निर्दिष्ट मजिस्ट्रेट का निर्देशन किया. किशोर कैदियों के लिए अलग – अलग हो गए थे. जेल वार्डरों के लिए हर तीन वर्ष में स्थानांतरित किया गया. आगंतुकों बोर्ड समाज सामाजिक कार्यकर्ताओं, पत्रकारों, न्यायविदों और सरकारी अधिकारियों के पार अनुभाग शामिल करना चाहिए, अदालत का आयोजन किया.

जेल में भीड़ भाड़ मनाया, कोर्ट, एक नियमित विशेषता थी. एक मंजूर क्षमता के खिलाफ 2023 की, 4000 तिहाड़ कैदियों को रखे.

सनत कुमार बिहार के सिन्हावी. राज्य (1989 पटना LJR 1024) में बिहार उच्च न्यायालय राज्य की दयनीय उदासीनता कम चसवतपदह कई वर्षों के लिए जेलों में सड़ किशोरों की खराब स्थिति से चौंक गया था, न्यायालय या कुछ में अभिखण्डन अभियोजन का आदेश दिया मामलों और उनकी हिरासत से रिहाई. किशोरों का परीक्षण मनाया, न्यायालय, आम तौर पर एक साल में समाप्त होना चाहिए. न्यायालय नेयह भी सुझाव दिया है कि इस प्रकार जारी किशोरों सरकारी खर्च पर उचित स्कूलों में रखा जाना चाहिए. न्यायालय ने भी संस्थाओं का दौरा करने के लिए और एक रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए एक समिति का गठन किया.

सनत कुमार सिन्हा अ. बिहार के राज्य (द्वितीय) (1990BBCJ357) समिति का दौरा किया, जैसा कि पहले निर्देशित है, और एक रिपोर्ट प्रस्तुत की. के बाद महिलाओं के लिए केयर होम लिए अवमानीय की स्थिति में होना पाया गया. कैदियों को बाहर उमजमक उपचार क्रूर था. न्यायालय ने एक वेश्यालय से भी बदतर होम पाया. तो भी किशोर घरों के. पुरुषों और महिलाओं के मिश्रित थे. किशोरों के दोषियों के साथ और परीक्षण के तहत मिश्रित थे. कैदियों गंभीर रूप से बीमार डॉक्टरों बेपरवाह साथ पाए गए. जिला न्यायाधीशों का दौरा, निरीक्षण और रिपोर्टिंग के द्व ारा अपने कर्तव्य को नहीं किया था. दिशा – निर्देशके बाद केयर होम के

कैदियों के मामले के लिए और किशोरों के लिए बिहार उच्च न्यायालय द्वारा जारी किए गए थे.

जया माला के मामले में (AIR 19821297 अनुसूचित जाति) सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि निवारक निरोध के तहत एक नाबालिग के निरोध पूरी तरह से अनुचित था और खारिज किया जा हकदार.

CRI में. कोई संदर्भ है. 1991 के (199393) 3CRI- 57) केरल उच्च न्यायालय आयोजित की है कि महत्वपूर्ण तारीख को फैसला करना है कि क्या अभियुक्त को बच्चों के न्यायालय या नहीं करने की कोशिश की जार हा है जिस पर अपराध को अभियुक्त की उम्र है.

भोला भगत और बिहार के एक और अ. राज्य (1997 (8) 720 एस सी सी) के मामले में जब एक याचिका की ओर से आरोप लगाया कि वह अभिव्यक्ति की परिभाषा के अर्थ के भीतर एक "CPPS" अधिनियम के तहत था पर उठाया है, यह अदालत के लिए अनिवार्य हो जाता है, के मामले में यह के रूप में अभियुक्त द्वारा दावा उम्र के बारे में कोई संदेह मनोरंजन, सवाल का आरोप लगाते की उम्र के निर्धारण के लिए एक जांच ही पकड के लिए या एक जांच करने के लिए आयोजित किया जा रहा कारण और के बारे में रिपोर्ट की तलाश एक ही यदि आवश्यक हो, पार्टियों पूछ उस संबंध में सबूत नेतृत्व के द्वारा. अदालत ने एक जांच का आयोजन और एक उम्र के बारे में, एक ही रास्ता या अन्य ढूँढने लौटना चाहिए.

शांतनु मित्रा अ.के मामले में न्यायालय ने पश्चिम बंगाल (1998 (5) 697 एस सी सी) आयोजित की घूरो कि यह कोई मामला है कि जन्म और मृत्यु के रजिस्टर में प्रविष्टि एक वास्तविक प्रविष्टि नहीं है, भले ही यह पर दर्ज की गई थी बजाय जन्म तिथि पर एक बाद की तारीख. एक बार है कि प्रवेश अपने कर्तव्यों के निष्पादन में एक अधिकारी द्वारा दर्ज की गई थी, यह मात्र तर्क पर नहीं शक है कि यह अपीलार्थी के जन्म की तारीख सुझाव दिया की तारीख के साथ समकालीन नहीं कर सकते हैं.

उमेश सिंह एवं अन्य के मामले में. अ. बिहार के राज्य (2000 (6)

89एस सी सी) सुप्रीम कोर्ट बच्चे की स्थिति की दलील हालां कि यह परीक्षण न्यायालय या उच्च न्यायालय में नहीं उठाया था उठाया जा करने की अनुमति दी.

उमेश चंद्र अ. राजस्थान के राज्य (1982 (3) SCR 583) में, सुप्रीम कोर्ट के तीन मुख्य मुद्दों पर विचारः

(i) क्या मुलजिमों घटना के समय पर 16 वर्ष की आयु से नीचे था?

(ii) क्या राजस्थान के बच्चों के अधिनियम 1970 में अधिनियमित अपीलार्थी के मामले में लागू किया गया था? और

(iii) अधिनियम की प्रयोज्यता के लिए प्रासंगिक तारीख?

अपीलार्थी के जन्म की सही तारीख का निर्धारण करने के मुद्दे पर विचार करते समय, कोर्ट कि जब पल मामले में अभियुक्त की उम्र दिखा दो अलग अलग स्कूलों के दो दस्तावेज हैं–नीचे के रूप में 16 साल और इन दोनों दस्तावेजों अपीलार्थी है अपने पिता द्वारा हस्ताक्षर किए और अस्तित्व में थे पूर्व सपजमउउवजंउ, इसलिए, वहाँ कोई जमीन इन दस्तावेजों की असलियत पर शक हो सकता है. 35 एस साक्ष्य अधिनियम के तहत, सभी आवश्यक है कि है कि दस्तावेज फर्ज यह दस्तावेज बनाए रखने के लिए है और वहाँ कोई कानूनी आवश्यकता है कि दस्तावेज सार्वजनिक अधिकारी के द्वारा ही बनाए रखा जाना चाहिए है एक व्यक्ति द्वारा नियमित रूप से बनाए रखा जाना चाहिए.

राजस्थान बच्चों अधिनियम, 1970 के लागू करने के संबंधके साथ, अदालत का आयोजन किया ह कि अधिनियम के बाद से अब पूरे राज्य में लागू किया गया है, एक अभियुक्त, जो एक बच्चे हो पाया है, सत्र न्यायालय द्वारा अग्रसारित किया गया है बाल अदालत जो उचित वाक्य को पारित कर सकते हैं. लेकिन एक बच्चे के खिलाफ कार्यवाही से पहले लंबित हैं सत्र न्यायाधीश, अधिनियम के 26 एस कोर्ट पर एक कर्तव्य है जिस में बच्चे के संबंध में कार्यवाही तारीख अधिनियम क्षेत्र में विस्तार के साथ आगे बढ़ना पर लंबित है यह आदेश दिया परीक्षण और एक ढूँढन रिकॉर्ड के रूप में यदि अधिनियम लागू नहीं करता है. लेकिन

परीक्षण के समापन और एक लग रहा है कि बच्चे को एक अपराध किया था रिकॉर्डिंग के बाद, कोर्ट कोई वाक्य नहीं, लेकिन कोर्टके तहत एक सांविधिक दायित्व है बच्चों के अदालत जो अनुसार उस बच्चे के संबंध में आदेश पारित करेगा बच्चे को आगे कर सकते हैं अधिनियम के प्रावधानों के रूप में अगर यह कि बच्चे अपराध अधिनियम के तहत जांच पर संतुष्ट है.

जो अधिनियम के आवेदन के प्रयोजन के लिए देखा जा सकता है सामग्री तारीख क्या है के रूप में सवाल पर, कोर्ट कि अभी तक अभियुक्त की उम्र के रूप में, जो एक बच्चे को हो सकता है, का संबंध है का दावा है, तारीख है जिस पर अपराध जगह लेता है और परीक्षण की तारीख नहीं है. बच्चों अधिनियम आधार है कि उस उम्र में अपने मन के रूप में एक वयस्क के मामले में आपराधिक मनः स्थिति पउचनजपदह के लिए परिपक्व नहीं कहा जा सकता पर उनके आपराधिक कृत्यों के परिणामों से युवा बच्चों की रक्षा के लिए अधिनियमित किया गया था. यह बहुत संभव है उस समय तक मामला सुनवाई के लिए आता है, उम्र एक अनैच्छिक कारक होने में बढ़ रहा है, बच्चे को एक बच्चे को समाप्त हो गया हो सकता है.

समीक्षा याचिका, बिहार की Arnitnklv- राज्य (2001 (7) 657 एस सी सी) के रूप में एक पहले बिहार ।तदपजदासअ. राज्य में पारित आदेश (2000 ब्त्स्2971. एल.जे.), खंड पीठ में एक संवैधानिक पीठ को भेजा गया था था आयोजित किया है कि निर्धारित है कि क्या अभियुक्त किशोर या किशोर न्याय अधिनियम, 1986 के तहत नहीं है महत्वपूर्ण दिनांक वह दिनांक है जिस पर आरोप पहले जाँच कार्यवाही में कोर्ट में प्रकट होता है. यह आदेश उमेशचंद्र अ. राजस्थान के राज्य (1982 (3) SCR 583), जिसमें यह आयोजित किया गया था में एक तीन जज बेंच के पहले के दृश्य है कि ऐसे मामलों में महत्वपूर्ण दिनांक वह दिनांक है जिस पर अपराध किया गया है के साथ संघर्ष में हुई थी. प्रतिबद्ध है और नहीं जब अभियुक्त पहले जांच कार्यवाही में न्यायालय के समक्ष प्रकट होता है. हालांकि, के बाद से एक अधिनियम है कि अपराध की तारीख पर आरोप

लगाया बाल नहीं था की 32 एस के तहत आयोजित जांच के निष्कर्ष वर्तमान मामले में सुप्रीम कोर्ट तक सही किया गया है पुष्टि की थी, इसलिए एक अकादमिक सवाल का विशुद्ध रूप से किया जा रहा ब्याज, पीठ केवल एक अकादमिक सवाल जवाब करने के लिए मना कर दिया.

झारखंड और अन्य (2005 (3) 551 एस सी सी) के प्रताप सिंह अ. राज्य में बात फिर से इसी मुद्दे पर एक पांच न्यायाधीश पीठ को भेजा गया था. सुप्रीम कोर्ट निम्नलिखित दो सवालों पर विचाररू

(क) क्या घटना की तारीख किशोर अपराधी या दिनांक जब वह कोर्ट में उत्पादन किया है ६ सक्षम प्राधिकारी के रूप में कथित अपराधी की उम्र का निर्धारण करने के लिए गणना की तारीख होगा?

(ख) क्या किशोर न्याय अधिनियम 2000 के अधिनियम 1986 के तहत शुरू की कार्यवाही के मामले में लागू हो जाएगा और लंबित जब 2001/01/04 से 2000 के अधिनियम के प्रभाव के साथ लागू किया गया था?

पहले सवाल का उत्तर देना, आयोजित की है कि तीन जज पीठ से नीचे उमेश बिंतकतं में रखी कानून व्यवस्था को सही है और दास ।तदपज में इस न्यायालय के दो न्यायाधीशों की खंडपीठ (2000 ब्तप एल.जे. 2971) द्वारा प्रदान की गई निर्णय नहीं है कि कोर्ट एक अच्छा कानून है, और निर्धारित करता है कि आरोपी किशोर था या नहीं करने के लिए महत्वपूर्ण तारीख घटना की तारीख और तारीख, जिस पर वह अदालत में पेश किया जाता है नहीं है. अदालत का आयोजन किया है कि धारा 3 की एक संयुक्त पढ़ने और 26, प्रस्तावना, और अधिनियम, 1986 के उद्देश्य और वस्तुओं संदेह का कोई मैट पत्ते कि विधायिका का इरादा सुरक्षा, इलाज, विकास और उपेक्षित या अपराधी किशोरों के पुनर्वास प्रदान करने और अधिनिर्णय के लिए क्या है, और इसलिए इस तरह के प्रावधानों को उदारतापूर्वक और सार्थक हो तो लगाया जाना चाहिए अधिनियम की वस्तु के रूप में अग्रिम करने के लिए.

दूसरे प्रश्न के संबंध में, यह देखा गया है कि केवल अधिनियम, 1986 और 2000 में किशोर की परिभाषा से संबंधित अधिनियम के बीच हड़ताली भेद. अधिनियम 1986 क तहत एक किशोर एक पुरुष किशोर है जो 16 वर्ष की आयु और एक महिला किशोर, जो 18 वर्ष की आयुप्राप्त कर ली है नहीं प्राप्त कर ली हैमतलब है. अधिनियम 2000 में पुरुष और महिला किशोर और अधिनियम, 1986 में 16 साल की सीमा के बीच कोई भेद अधिनियम 2000 में तैयार किया गया है 18 साल के लिए बढ़ा दिया गया है. यह निर्णय किया गया कि अधिनियम 2000 के प्रावधानों उन शुरू मामलों के लिए लागू होगा और लंबित ध1986 बशर्ते कि व्यक्ति के उम्र के 18 साल पर 2001 /01/04 के रूप में पूरा नहीं था अधिनियम के तहत अपराधों के लिए जांच परीक्षण.

राजिंदर चंद्र अ. राज्य छत्तीस गढ़ और है कि जब लग रहा है कि क्या वह किशोर है या नहीं करने के प्रयोजन के लिए अभियुक्त की उम्र के निर्धारण के सवाल के साथ काम कर, (2002 (2)287एस सी सी) एक अन्य अदालत का आयोजन किया के सअति तकनीकी दृष्टिकोण नहीं अपनाया जाना चाहिए, जब कि सबूत की ओर से शुरू की प्रशंसा दलील है कि वह एक किशोर और अगर दो विचारों को कहा सबूत पर संभव हो सकता है, कोर्ट के आयोजन की पक्ष में झुक जाना चाहिए था के समर्थन में अभियुक्त अपराधी की सीमा रेखा मामले में एक किशोर हो.

बबलू पासी अ.राज्य झारखंड और अन्य (2008 (13)137स्केल) में न्यायालय ने कहा कि यह न तो संभव है और नही वांछनीय करने के लिए नीचे एक व्यक्ति की उम्र का निर्धारण करने के लिए एक अमूर्त सूत्र रखना है. जन्म की तारीख के लिए रिकॉर्ड पर सामग्री के आधार पर और पार्टियों द्वारां ककनबमक सबूत की सराहना पर निर्धारित किया जा रहा है. चिकित्सा एक व्यक्ति की उम्र के रूप में एक बहुत ही उपयोगी मार्ग दर्शन कारक हालांकि, सबूत, निर्णायक और नहीं है के साथ अन्य ठोस सबूत के साथ विचार किया जाना है. बोर्ड के आदेश के एक तरफ जमीन पर सेट किया गया है कि यह यंत्रवत्भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 35के प्रावधानों के संदर्भ में इसके प्रमाण के मूल्य की प्रशंसा के

बिना निर्णायक के रूप में मतदाता सूची में प्रविष्टि स्वीकार किए जाते हैं. अदालत का आयोजन किया है कि मतदाता सूची की एक मात्र उत्पादन, एक सार्वजनिक दस्तावेज हालांकि, धारा 35 के मामले में साक्ष्य के अभाव में पर दिखाने के लिए सामग्री क्या मतदाता सूची में प्रवेश किया था, की उम्र साबित करने के लिए पर्याप्त नहीं था आरोप लगाया.

हरि राम अ.राजस्थान के राज्य (2009 (6) 695 पैमाने पर) के मामले में सुप्रीम कोर्ट 1986 के किशोर न्याय अधिनियम में 16 साल तक के किशोर न्याय अधिनियम 2000 में 18 साल के किशोर की उम्र के परिवर्तन के मुद्दे पर बसे और इसके प्रभाव. यह निर्णय किया गया कि एक किशोर जो 18 साल अपराध के कमीशन की तारीख पर नहीं पूरा किया था भी किशोर न्याय अधिनियम, 2000 के लाभ के लिए हकदार था, के रूप में यदि धारा 2 (कश्मीर) के प्रावधानों हमेशा भी अस्तित्व में किया गया था 19,086 अधिनियम के आपरेशन के दौरान.

यातना

Eachara Warrier के मामले में, निवेदक राजन नामक इंजीनियरिंग विद्यार्थी के पिता जिसको विश्वविद्यालय के ताशी के समय गैरकानूनी रूप से गिरफ्तार किया गया था। राजन के ऊपर अत्याचार किया गया और यह आपात स्थिति में हुआ था। यहां न्यायालय को इस गिरफ्तारी की सच्चाई पर जांच करने के लिए अनुरोध किया गया। न्यायालय का फैसला यह था कि राजन असल में पुलिस कस्टडी में था और पुलिस का दावा झूठ था। यह फैसले के बावजूद भी पुलिस के खिलाफ कोई कार्रवाई नहीं की गई और कहा "हमारा मक्सद किसी को दर्द देना नहीं, मात्र मानव स्वतंत्रता के प्रहारी राहतो का है" न्यायालय समझने में विफल रही होगी नहीं तो सत्य को जानकर भी यह निर्णय लिया होगा कि उन पुलिस अफसरों की दर्द देना अनिवार्य नहीं होगा। भव्य लगा निर्णय और उच्च आदर्शों का प्रभाव जन सरकार कर्मचारियों पर कभी नहीं पड़ा।

रघुबीर सिंह के केस में एक व्यक्ति पुलिस कस्टडी में बहुत मारा गया था जो फिर मर गया। उसके दोनो पैरों के निचली हिस्सों पर मारा गया था। और उसे घोटकर मारा गया था। परंतु पुलिस ने कहा कि यह एक आत्महत्या थी। न्यायालय ने हत्या के अधीन दोशी ठहराया।

खत्री के केस (भागलपुर बलाइंडिंग केस) में देश इस खबर पर दंग रह गई जब पुलिस ने किसी जुर्म में संदिग्ध व्यक्तियों के दोनों आंख निकाल दिए। जब कोर्ट इस केस पर निरीक्षण कर रही थी तो यह पता चला कि इस हादसा के शिकार से कानूनी सहायता मना की गई थी। सहायता ना देने की यह कारण पेश की गई थी कि सहायता के लिए पूछा नहीं गया था। हुसैनरा खातून के केसा के बावजूद जहां सुप्रीम कोर्ट ने यह संवैधानिक जनादेश दी थी कि कानूनी सहायता देना जरूरी है। बिहार सरकार ने यह कारण पेश किया कि कानूनी सहायता के लिए पूछा नहीं

गया था। अदालत ने कहा कि राज्य को वित्तीय या प्रशासनिक गैर–क्षमता की अनुमति नहीं दी जाएगी। कानूी सहायता न केवल परीक्षण पर लेकिन शुरूआत से प्रदान की जानी चाहिए जब मुलजिमों को मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत किया है। अनपढ़ लोगों को कानूनी सहायता के लिए पूछने की उम्मीद नहीं कर सकते है।

कश्मीरी देवी के केस में निवेदक के पति को दिल्ली पुलिस ने कस्टडी में मार दिया था। वह इस मुद्दे के जांच में खुश नहीं थी और न्यायालय से निवेदन किया कि यह जांच किसी स्वतंत्र अन्वेशक को सौंप दिया जाए। न्यायालय ने जांच सीबीआई को सौंप दिया।

गौरी षंकर के मामले में, अदालत ने उच्च न्यायलय के ओदष को खारित कर दिया जिसमें पुलिस अधिकारी को बरी कर दिया गया भा साथ ही जो जुर्माना लगाया गया था उसे भी वापिस हटाने से मना करते हुए कहा कि हिरासत में मृत्यृ एक गंभीर अपराध है।

चंद्रप्रकाष केवलचंद के मामले में, उच्चतम न्यायालय ने उच्च न्याययलय के निर्णय को पलट दिया जिसमें हिरासत मे हुई छेडछाड व बलात्कार के दोशी पुलिस को बरी कर दिया गया था ।

कोर्ट ने यह भी कहा कि हिरासत में पीउित उस समय अकेला था और कोई भी उसकी गवाही देने के लिए नही होगा। कोर्ट ने हिरासत में हाने वाले बलात्कारों पर गहरी चिंता व्यक्त की है।

भगवान सिंह में मामले में, सुप्रीम कोर्ट ने हाई कोर्ट के निर्णय का अनुमोदन किया जिसमें पुलिस अधिकारी को हिरासत में हुई मृत्यु के लिए सजा दी गई थी।

षामकांत के मामले में, (1992 2 Cri. 943) सुप्रीम कोर्ट ने हिरासत में हूई मुत्यु के लिए उन सभी पुलिस अधिकारियों को जिम्मेदार ठहराया है जो काम पर उपस्थित थे साथ ही कहा कि उच्च न्यायालय ने इसमें उदारता दिखाई है।

कुलदीप सिंह के मामले में, दिल्ली उच्च न्यायालय ने निर्देष दिया कि एफ. आई. आर. दर्ज की जाए जिसमें याचिकाकर्ता को पुलिस हिरासत में

उप अधीक्षक द्वारा पीटा गया था।

एस.पी. वईथानाथन बनाम सनमुगनाथन में (1994 4 scc 568) सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि पुलिस अधिकारियों के खिलाफ यातना की षिकायत दाखिल करने में कोई भी समय सीमी नही रखी जा सकती है क्योकि उन्होने अपना काम समय से नही किया है।

आर. एस. सोढी के मामले में, अदालत ने उत्तर प्रदेष में हुई मुठभेड हत्याओं के मामलों में सी.बी.आई जांच के आदेष दियें।

सचिव, हायलाकंदी बार ऐसोषिएषन बनाम राज्य आसाम ;1994 ब्तपण श्रस् 2197द्ध सुप्रीम कोर्ट ने हिरासत में हत्या के केस में पुलिस द्वारा दी गई रिपोर्ट को खारिज कर दिया व सी.बी. आई को अपराध की जांच करने के लिए कहा।

खेदात मजदूर चेतना संघ के मामले में (JT 1994(6) SC 60)] याचिकाकर्ता व्यापार संध ने अपने सदस्यों के खिलाफ पुलिस हिसा, दमन व अत्याचार का आरोप लगाते हुए उच्चतम न्यायालय ये संपर्क किया। पुलिस ने झूठे मामलों में, अवैध गिरफ्तारी, धमकी और हिरासत में यातना का सहारा लेकर उन्होने अपने मौलिक अधिकारों का उल्लंधन किया है। इन आरोपो पर सी.बी.आई. रिपोर्ट ने याचिकाकर्ता के मामले में उसका समर्थन किया है। कोर्ट ने सी.बी.आई. को जांच करने के आदेष दिये और षामिल सभी लोगों के खिलाफ मामला दर्ज करने के लिए कहा। साथ ही इन मामलों की सुनवाई किसी अन्स जिले में आयोजित करने के लिए कहा।

जसपाल सिंह के मामले में (1995 Supp 3SCC 234) सुप्रीम कोर्ट ने उन अधिकारियों को दंडित किया जिन्होंने एक नजरबंद को सुप्रीम कोर्ट के परिसर में पिटाई और लात मारा।

श्रीमति परमजीत सिंह, जसवंत सिंह खालसा की पत्नी, ने अपने पति के उत्पादन के लिए बंदी प्रत्यक्षीकरण की पंजाब की राज्य द्वारा रिट के लिए सर्वोच्च अदालत का दरवाजा खटखटाया (JT 1995 (8) SC 418) चौकाने वाला मामला यह था कि एक मानवाधिकार कार्यकर्ता का

पुलिस द्वारा अपहरण किया गया था, जब वह अपना कार धो रहे थे। उन्होंने 2000 षवों के बारे में जांच किया जिनको लावारिस षरीर के रूप में पुलिस ज्यादतियों द्वारा अंतिम संस्कार किया गया था। अदालत ने सीबीआई के निदेषक को निर्देषित किया कि वह श्री खालसा के लापता होने की जांच करने के लिए और 'अज्ञात' षरीर का अंतिम संस्कार पर जांच करने के लिए बोला।

नवकिरण सिंह के मामले में (1995 4 SCC 591), सुप्रीम कोर्ट ने अदालत को अपहरण और पुलिस द्वारा अधिवक्ताओं की हत्या की जांच व निर्देष दिया।

पीयूसीएल बनाम यूनियन ऑफ इंडिया में, अदालत ने फर्जी मुठभेड़ के मामलों में एक सत्र न्यायाधीष को जांच के लिए सेट किया। सत्र न्यायाधीष की रिपोर्ट प्राप्त करने पर बाद में मामले में अदालत ने मुठभेड़ में मारे गए पीड़ितों के परिजनों को एक लाख रुपये के मुआवजे देने का आदेष दिया।

पर्वाथामा के मामले में सुप्रीम कोर्ट पीड़ितों और हिरासत में होने वाली मौतों के परिवारों को मुआवजा आयोजित करने के सवाल से एक बार फिर निपटा और बोला कि जल्द से जल्द अंतरिम मुआवजा दिया जाए।

नैन कौर के मामले में सुप्रीम कोर्ट सीबीआई को जांच की षुरूआत करने के लिए बोला जिसमें एक वकील का अभ्यास करने के लिए बीएसपी द्वारा मारने का आरोप लगा था।

राज्य मध्य प्रदेष बनाम ष्यामसुन्दर त्रिवेदी और अन्य (1995), सर्वोच्च अदालत ने कहा कि हिरासत में मौत या पुलिस अत्याचार के मामलों में अतिरंजित पालन करने के लिए और हर उचित संदेह से परे सबूत की स्थापना पर आग्रह जमीनी हकीकतों को अनदेषा करना तथ्य स्थितियों ... न्याय के गर्भपात में अक्सर परिणाम और न्याय वितरण प्रणाली बहुत बड़े षक्त है। अदालत ने प्रतिवादी अधिकारियों को दोशी ठहराया और निर्देष दिया कि उन से बरामद ठीक मृतक के वारिस को भुगतान दिया जाए।

विनीत गुप्ता के मामले में, अदालत ने पुलिस को आदेष दिया जांच के दौरान थर्ड डिग्री के तरीकों का उपयोग ना करें।

सावित्री बहेरा बनाम स्टेट ऑफ उड़िसा (1998), अभियुक्त के 7 साल से लापता होने से, इसलिए उनमें आम कानून द्वारा मृत आयोजित आरोप लगाया गया था जबकि वह जेल अधिकारियों के हिरासत में था। 150000 रुपये का मुआवजे का दावा दिया गया था।

सत्याबाई सुनील पवार बनाम स्टेट ऑफ महाराश्ट्र (1998), एक महत्वपूर्ण मुआवजे का मामला रहता है हिरासत में मौत के खिलाफ जहां बम्बे उच्च न्यायालय राज्य के लिए प्रभु उन्मुक्ति की रक्षा को स्वीकार कर दिया। मुआवजा के लिए दावा स्वीकार करने में अदालत ने हिरासत में मौत के रूप में घोशणा की "एक सभ्य समाज में आप अपराधों की सबसे बुरी तरह का है ये कानून के षासन द्वारा नियंत्रित है और यह करना एक गंभीर खतरा है।"

उच्च न्यायालय ने याचिकाकर्ता को उनके दो युवा बच्चों को और बुढ़े ससुर में ध्यान रखते हुए 150000 रुपये की क्षतिपूर्ति से सम्मानित किया।

परमजीत कौर के मामले में, सुप्रीम कोर्ट ने पहले ही सामूहिक अंतिम संस्कार में जांच का आदेष दिया था। 585 षवों की पहचान की गई थी। अदालत ने इस मामले को एनएचआरसी के पास भेज दिया ताकि वो पीड़ितों के परिवारों का मुआवजा तय करे।

सुगना बनाम राज्य कर्नाटक (2000) में, मृतक का चोटों के कारण एक सरकारी अस्पताल में मृत्यु हो गई जबकि वो पुलिस के हिरासत में था। लेकिन पुलिस ने कहा कि यह चोटे जेल परिसर में हुए दंगों के कारण हुआ था।

पुलिस के सच छुपाने के कारण और मृतक के परिवार की परिस्थिति देखकर कोर्ट ने मृतक की पत्नी को 3 लाख रुपये दिये।

फत्तुजी बनाम सुपरीटेंडेंट ऑफ पुलिस, अकोला (2002) में याचिकाकर्ता को बेटा की मृत्यु प्रवृत्त चोटों के कारण हो गई, ज बवह लॉक–अप में थे।

उच्च न्यायालय की राय थी कि पुलिस समान रूप से मौत के लिए जिम्मेदार थे और यह हिरासत में मौत का एक गंभीर मामला और आर्टिकल 21 काक उल्लंघन करना भी है।

सदषिओ मुंडाजी भलेराव के मामले में उच्च न्यायालय हिरासत में मौत के मामले में पुलिस अधिकारियों को दोशी ठहराया और उन्हें आजीवन कारावास की सजा दी और पीड़ितों के परिवारों को मुआवजा भी सम्मानित किया।

निष्पक्ष प्रक्रिया

उनत्तीस नवंबर, 1985 को संयुक्त राष्ट्रसंघ की सामान्य सभा ने एक कैदी के लिए न्यायिक प्रक्रिया के विषय की औचित्य रक्षा के लिए एक प्रस्ताव (Declaration of Basic Principles of Justice for Victims of Crime and Abuse of Power के अंतर्गत) पारित किया :

"4. पीड़ितों की दया और गरिमा के साथ इलाज किया जाना चाहिए। वे न्याय के तंत्र का उपयोग करने के तत्काल निवारण के हकदार हैं, ऐसी व्यवस्था उन्हें कानून प्रदान करता है।

5. न्यायिक और प्रशासनिक तंत्र स्थापित किया जाना चाहिए जहां पीड़ितों को औपचारिक रूप से शीघ्र, निष्पक्ष, सस्ती और सुलभ न्याय प्रणाली सुनिश्चित की जा सके। ऐसी प्रणालियों के जरिये पीड़ितों को इन अधिकारों के विषय में सूचित किया जाना चाहिए।

6. न्यायिक और प्रशासनिक प्रक्रियाओं के पीड़ितों की जरूरतों के लिए निम्नलिखित मदद की जानी चाहिए :

(ए) संगीन अपराधों के मामले में पीड़ितों को उनके मुकदमों की कार्यवाही, प्रगति एवं अन्य संबंधित विषयों की जानकारी मुहैया करायी जानी चाहिए।

(ब) मुकदमों की कार्रवाही के चरण के दौरान पीड़ितों की व्यक्तिगत राय या संवेदनाओं को सुना जाना चाहिए एवं उसपर समुचित विचार किया जाना चाहिए।

(सी) कानूनी प्रक्रिया के दौरान पीड़ितों को समुचित सहायता प्रदान किया जाना चाहिए।

(डी) पीड़ितों की असुविधा को कम करना, उनकी नीजता की रक्षा करना, घर पर उनके परिवार की सुरक्षा का ख्याल करना

(ई) मामलों के स्वभाव और आदेशों के निष्पादन में अनावश्यक देरी से बचना पीड़ितों को दिये गये फरमान को अमल में लाना।

7. विवादों के समाधान के लिए मध्यस्थता और प्रथागत न्याय स्वदेशी प्रथाओं का उपयोग किया जाना चाहिए तथा पीड़ितों के लिए सुलह की सुविधा दी जानी चाहिए।

भारत का संविधान प्राकृतिक न्याय के इन सिद्धांतों को पहचानता है और इसे भाग 3 में शामिल किया गया है. इन सिद्धांतों को आम तौर पर कैदियों सहित भारत के हर नागरिक के लिए लागू किया जाता है। भारतीय न्यायपालिका ने विभिन्न मानवीय पहलुओं को ध्यान में रखते हुए कई एंतिहासिक निर्णय दिये है। प्रस्तुत अध्याय में भारतीय न्याय प्रणाली की न्यायसंगत प्रक्रिया को दर्शाया गया है।

अब्दुल अजीज बनाम मैसूर राज्य (1975 क्रिमिनल लॉ जर्नल 335) में कर्नाटक उच्च न्यायालय ने कहा है कि यदि अभियुक्त को कानूनी सहायता से मना कर दिया गया हैं और वह एक वकील नहीं रख सकता है तो अदालत स्वयं अभियुक्त से प्रश्न कर सकती है या कोई वकील रख सकती है। उक्त मुकदमों में अदालत ने पूर्ण न्यायिक प्रक्रया का आदेश दिया।

सुप्रीम कोर्ट कहा कि शिवप्पा के मुकदमें (एआईपी 1995 एससी 980) मजिस्ट्रेट के सामने मुजरिम के इकबालिया बयान की रिकॉर्डिंग मान्य किया जाना चाहिए और यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि बयान स्वैच्छिक हैं। इस मामले में अभियुक्त के इकबालिया बयान के दौरान यह नहीं बताया गया कि तुम मजिस्ट्रेट के सामने बयान दे रहे हो। इससे यह शंका उत्पन्न होती है कि हो सकता है उस समय अभियुक्त किसी व्यक्ति के दबाव से अपना इकबालिया बयान दिया हो। इसके लिए उसे पुलिस कस्टडी में नहीं भेजा जा सकता है।

सरस्वती के मुकदमे में (1993 महाराष्ट्र लॉ जर्नल 1529), अभियोजन पक्ष ने इस तर्क का विरोध किया कि अभियुक्त ने जब वारदात को अंजाम दिया तो वह मानसिक रोग से ग्रसित की। बंबई उच्च न्यायालय

ने कहा कि बचाव पक्ष के द्वारा उक्त तर्क देने मात्र से ही न्यायालय की प्रक्रिया पुरी नहीं हो जाती है। मुकदमें के ट्रायल के दौरान और भी कई साक्ष्य उभरे हैजो दर्शाते है कि अपराध जान–बुझकर किया गया है। अतः अभियुक्त को माफ नहीं किया जा सकता है।

महाराष्ट्र राज्य बनाम बी.के. सुब्बाराव में (1993 आपराधिक 2984 कानून जर्नल), बंबई उच्च न्यायालय ने कहा कि यह आपराधिक कानून की एक प्राथमिक आवश्यकता है कि जब आरोपी को जांच एजेंसीयो के द्वारा अदालत के समक्ष के लिए प्रस्तुत किया जाता है तब अदालत का काम भारतीय संविधान में दर्ज नियमों के अंतर्गत नागरिकों के अधिकारों का पालन करना है साफ–साफ साक्ष्य के आधार पर मुकदमे की सुनवाई करना एवं उचित निर्णय देना है। इस मामले में सशस्त्र बलों के एक वरिष्ठ अधिकारी पर कार्यालीय गोपनीयता एवं परमाणु उर्जा कानून के तहत मुकदमा चलाया गया। अदालत ने कहा कि इस गंभीरता भरे मामले में किसी भी व्यक्ति को नहीं बख्षा जा सकता है।

जयेंद्र विष्णु ठाकुर बनाम महाराष्ट्र राज्य और एएनआर (2009 (7) एससीसी 104 (1), सुप्रीम कोर्ट ने कहा है कि बगैर अधिकार क्षेत्र को पारित अधिकारों का किसी अभियुक्त पर लागु नहीं होता है। जारी किये गये इस तरह के आदेश प्रक्रियात्मक नियम के तहत अर्थहीन हो जाते हैं।

दादू/तुलसीदास बनाम महाराष्ट्र राज्य (ऑल इंडिया रिपोर्ट 2000 सुप्रीम कोर्ट 3203) के मामले में अभियुक्तों की ओर से एक अभियुक्तों ने भारतीय संविधान की धारा 14 एवं 21 के तहत नारकोटीक्स ड्रग्स एवं साइकोट्रापिक ससटान्सेज एक्ट, 1985 को चुनौती दिया। जिसको की सुप्रीम कोर्ट ने यह कहते हुये खारिज कर दिया कि नागरिक अधिकार का तात्पर्य यह नहीं है कि यह अनैतिक रूप से लिया जाये।

दीपक बजाज बनाम महाराष्ट्र राज्य और एएनआर (ऑल इंडिया रिपोर्ट 2009 सुप्रीम कोर्ट 628) में सुप्रीम कोर्ट ने कहा है कि अगर हिरासत आदेश ही अवैध है तो किसी को भी यह अधिकार नहीं है कि वह उस व्यक्ति को जेल में रखे या भेजे।

मोहम्मद फारूक अब्दुल गफूर और एएनआर बनाम महाराष्ट्र और महाराष्ट्र राज्य बनाम मोहम्मद नइमत कसमशेख और अन्य (2009 120 सुप्रीम कोर्ट की रिपोर्ट 1093) में सुप्रीम कोर्ट ने वचन सिट के मामले में दिये गये आदेश के आलोक में कठोर न्याय के बदले परंपरागत एवं न्यायसंगत प्रक्रिया की सिफारिश की। इसी मुकदमें के आधार पर सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि सह–अभियुक्त के इकबालिया बयान को टाडा के सेक्शन 15 के अनुसार अभियुक्त के खिलाफ एक प्रभावी साक्ष्य के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।

पैरोल

आधुनिक दिन ष्पैरोलष् की सिद्धांत, के रूप में भारतीय न्यायपालिका में प्रयोग किया जाता है, 19 वीं सदी में ब्रिटिश दंड कालोनियों के द्वारा उत्पन्न किया गया. दो बुनियादी शर्तों, जो कर रहे हैं कैदी के अच्छे आचरण और दूसरी असाधारण एक निश्चित अवधि के लिए कैदी की रिहाई की जरूरत महसूस हालत पर शुरू में जेल से पैरोल या अस्थायी रिहाई दी गई थी. समय बीतने के साथ पहली शर्त पैरोल से कटे किया गया था और एक स्वतंत्र कानूनी आदर्श, अर्थात् "थोड़े दिन की छुट्टी" के रूप में पहचान किया गया था. भारत में पैरोल और थोड़े दिन की छुट्टी की अवधारणाओं, हालांकि विधायिका द्वारा परिभाषित नहीं है, की पहचान की गई और विभिन्न ऐतिहासिक निर्णय और राज्य विधान के माध्यम से लागू है. एक व्यापक दृष्टिकोण पर पैरोल दी गई है और governed निम्नलिखित शर्तोंर्फ (क) कैदी परिवार के एक सदस्य की मृत्यु हो गई है या गंभीर रूप से बीमार है या कैदी खुद को गंभीर रूप से बीमार है, या (ख) कैदी की शादी खुद, उसकी बेटा, बेटी, पोता, पोती, भाई, बहन, बहन के बेटे या बेटी के लिए मनाया जा सकता है, या (ग) कैदी की जुताई, दिखा या कटाई या अपनी जमीन पर किसी भी अन्य कृषि आपरेशन पर ले जाने या अस्थायी रिहाई के लिए आवश्यक है वास्तव में कैदी के कब्जे में अपने पिता के अविभाजित भूमि, या (घ) किसी अन्य पर्याप्त कारण के लिए ऐसा करने के लिए वांछनीय है. (ङ) पैरोल के बाद ही दी जा वाक्य के एक हिस्से को पहले से ही सेवा कर सकता है. (च) यदि पैरोल की शर्तों चंतवसमम वह जेल में अपनी सजा की सेवा करने के लिए वापस आ जा सकता है के द्वारा पालन नहीं कर रहे हैं, इस तरह की स्थितियों एक नया अपराध के उन लोगों के रूप में हो सकता है. (छ) पैरोल भी खुद मिद्धदोष अपराधी के स्वास्थ्य से संबंधित पहलुओं के आधार पर दिया

जा सकता है. दूसरी ओर थोड़े दिन की छुट्टी पर नेकचलनी remissions जेल में अपने अच्छे आचरण के माध्यम से कैदी द्वारा खरीद के आधार पर दी जाती है.

शर्तों श्पैरोलश और 'थोड़े दिन की छुट्टी' भारतीय विधायिका द्वारा परिभाषित नहीं किया गया. हालांकि दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय XXII, निलंबन और वाक्य की छूट के साथ 1973 के सौदों, संदर्भ पैरोल और थोड़े दिन की छुट्टी संहिता में परिभाषित नहीं है. उनके अर्थ को समझने के लिए और अर्थ क्या इन शब्दों में प्रयोग किया जाता है यह आवश्यक है निम्नलिखित भारत के उच्चतम न्यायालय के न्यायिक निर्णय पर निर्भर है.

सुनील Fulchand शाह भारत और अन्य अ. संघ (2000 (3) 409 एस सी सी) के मामले में सुप्रीम कोर्ट की संवैधानिक पीठ रखा था कि 'पैरोल' "अस्थायी रिलीज की हिरासत से एक रूप है, जो नहीं है वाक्य या नजरबंदी की अवधि को निलंबित है, लेकिन हिरासत से सशर्त रिहाई प्रदान करता है और वाक्य के दौर से गुजर के मोड परिवर्तन. पैरोल की अवधि की गणना पर सवाल तय करने के पीठ जबकि आयोजित किया है कि अगर हिरासत की अवधि या तो विदेश और तस्करी अधिनियम, 1974 की विनिमय रोकथाम के संरक्षण की धारा 12 के तहत या वत4कमत के द्वारा किए गए अनंतिम रिलीज के एक आदेश के द्वारा बाधित है कोर्ट की, तो उस हद तक हिरासत की अधिकतम अवधि कटौती हो जाता है और न तो पैरोल की अवधि और न ही अवधि के दौरान जो मशीन चलाने और रोकने का पुर्जा न्यायालय के आदेश के तहत जारी किया गया था, जबकि हिरासत की अधिकतम अवधि कंप्यूटिंग बाहर रखा जा सकता है.

सुप्रीम कोर्ट जबकि राज्य Harayana v. मोहिन्दर सिंह (2000 (3) 394 एस सी सी) ऊपर सुनील Fulchand भारत और अन्य शाह अ. संघ के निर्णय पर भरोसा है, के मामले में पैरोल श्की परिभाषा का निर्धारण जिसमें भेद के बीच अनुदान पैरोल और थोड़े दिन की छुट्टी की स्पष्ट रूप से किया गया था बाहर लाया जाता है और यह निर्णय किया गया

है कि पैरोल excutive लिया के बाद एक अपराधी पर दरवाजा बंद कर दिया गया है कार्रवाई करने के लिए संबंधित है. पैरोल की अवधि के दौरान वाक्य लेकिन वाक्य वास्तव में उस अवधि के दौरान भी चलाने के लिए जारी है के निलंबन नहीं है. कोर्ट ने कहा है कि जब एक कैदी पैरोल पर रिहाई की उसकी अवधि की सजा की कुल अवधि की ओर गिनती नहीं है, जबकि जब वह थोड़े दिन की छुट्टी पर वह उसके द्वारा उसकी आया वाक्य की कुल अवधि की दिशा में गिना रिहाई की अवधि के लिए पात्र नहीं करता है. इस मामले में सुप्रीम कोर्ट से पहले प्रश्न था अगर कैदी,), जो भारतीय दंड संहिता 945 1860 की धारा 376 के तहत एक अपराध की सजा सुनाई है, हालांकि जेल में ही सीमित है, उसकी सजा की छूट के लिए हकदार है, जब सरकार ने परिपत्र के तहत जारी किए गए दंड प्रक्रिया संहिता का कोड की धारा 432, 1973 एक कैदी जो धारा 376 के तहत दोषी ठहराया गया है करने के लिए इस तरह के छूट अनुदान करता है. सुप्रीम कोर्ट ने आयोजित की है कि जो पैरोल या थोड़े दिन की छुट्टी पर हैं करने के लिए इच्छित लाभ जो जमानत पर हैं नहीं बढ़ाया जा सकता है.

हरियाणा और अन्य (2002 (3) 18 एस सी सी) के अवतार सिंह अ. राज्य में, अपीलार्थी अवतार सिंह, कारावास की सजा के दौर से गुजर अपराधी पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय के समक्ष एक आवेदन दायर किया था राज्य सरकार को एक दिशा के लिए मांग पैरोल की अवधि शामिल उसके द्वारा आया कारावास की कुल अवधि में उनके द्वारा लाभ उठाया. आवेदन पकड़े कि पैरोल की अवधि वास्तविक उसके द्वारा आया वाक्य की ओर नहीं गिना जा सकता है उच्च न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया था. उच्च न्यायालय के निर्णय के दो अंक पर उच्चतम न्यायालय में अपील किया गया था, सबसे पहले, सुनील Fulchand शाह (पूर्व) में सुप्रीम कोर्ट की संवैधानिक पीठ के बाद से आयोजित किया था कि पैरोल की अवधि की सजा की अवधि के रूप में गिना जा सकता है कारावास, इसलिए हरियाणा अच्छा आचरण कैदियों की धारा 3 के (अस्थाई रिलीज) अधिनियम, 1988 की उप–धारा (3) असंवैधानिक और संविधान की धारा

21 का उल्लंघन था. दूसरे, कि अधिनियम की धारा 3 की उप धारा (3) भेदभावपूर्ण यद्यपि के रूप में एक कैदी की धारा 3 के तहत अस्थायी रूप से जारी करने के लिए वाक्य की कुल अवधि के लिए की ओर रिहाई की इस अवधि गिनती हकदार नहीं होगा, जबकि धारा के तहत एक कैदी के अस्थायी रिलीज थोड़े दिन की छुट्टी पर 4 वाक्य की कुल अवधि की दिशा में गिना जाएगा.

कोर्ट पहले विवाद को खारिज कर दिया,यह देखते हुए कि धारा 3 कैदी की निश्चित स्थिति पर धारा 4 एक सुधारात्मक उपाय के रूप में अधिनियमित किया गया था के रूप में एक कैदी जब कि कैद में अच्छे आचरण दिखाने को पूरा करने के लिए किया गया था. चूंकि वर्गीकरण तर्क संगत मापदंड पर आधारित था कि यह प्रकृति में भेदभावपूर्ण नहीं कहा जा सकता. दूसरा विवाद आधार पर अस्वीकार कर दिया था कि संवैधानिक पीठ को स्पष्टरूप से आयोजित किया गया है कि हालांकि आमतौर पर एक के अस्थायी रिहाई की अवधि, पैरोल पर कैदी के निरोध की कुल अवधि की दिशा में गिना जा जरूरत है, लेकिन इस हालत विधायी कार्य नियमों, द्वारा कटौती की जा सकती है निर्देश या पैरोल के अनुदान के मामले. विवाद है कि अधिनियम की उप–धारा(3) संविधान न्यायालय ने कहा कि पैरोल पर अस्थायी रिहाई की अवधि के बाद से वंचित किया गया है जब कि वास्तविक कैदी द्वारा एक वैधवैधानिक कार्य से आया वाक्य गिनती के अनुच्छेद 21 के द्वारा मारा जाता है, यह है कि कैदी के इस तरह के अधिकार कानून के कारण प्रक्रिया के बिना किया गया है दूर ले जाया नहीं कहा जा सकता.

हरियाणा v. Nauratt सिंह और अन्य (2000 (3)514एस सी सी) के राज्य में, अदालत के समक्ष सवाल था कि अगर दोषी व्यक्ति एक अपील दायर की और उसकी सजा न्यायालय और न्यायालय द्वारा निलंबित कर दिया और सजा के बाद वाक्य की पुष्टि की 3 साल की अवधि है, वह दावा ह कि वह सब पर जेल की जरूरत नहीं है के रूप में वह अधिक से अधिक 3 साल के लिए जमानत पर पोस्ट सजा चरण के दौरान भी था हकदार है? कोर्ट ने कहा कि अगर अपराधी ऐसे छूट के हकदार है,

आपराधिक न्याय प्रणाली के एक मजाक के लिए कम हो जाएगा. अदालत इसलिए प्रतिवादी के दावे से इनकार किया.

एक अन्य मामले में पंजाब के जोगिंदर सिंह अ. राज्य और दूसरों (2001 (8) 306 एस सी सी) सुप्रीम कोर्ट जबकि हरियाणा अ.छंनतंजजं सिंह और अन्य above mentioned मामला राज्य के रूप में एक ही सवाल आयोजित तय है कि यदि सेवा की अवधि के दौरानउनके वाक्य किसी भी ताजा छूट अधिसूचना संबंधित सरकार द्वारा जारी किया जाता है, उसी ने कहा कि अधिसूचना में उल्लिखित नियमों और शर्तों पर लागू किया जाएगा अगर यह कहा कि दोषियों पर लागू है.

शरद केशव मेहता के मामले में (1989 ब्तप एल.जे. 681), बंबई उच्च न्यायालय ने कहा कि थोड़े दिन की छुट्टी पर रिलीज किया गया था और उसी के कैदी इनकार की कानूनी और पर्याप्त सही सामग्री का संकेत तथ्यों पर आधारित होना चाहिए कि एक ही जनता परेशान होता शांति और शांति. वर्तमान मामले में, यह निर्णय किया गया कि अस्वीकृति गलत था.

प्रेस

बंदियों की मीडिया व प्रेस तक पहुँच तीन अधिकारों से जुड़ी है, अर्थात्

(क) वाक् व अभिव्यक्ति का अधिकार,

(ख)जानकारी का अधिकार और

(ग) गोपनीयता का अधिकार

भारत के संविधान के भाग–III का अनुच्छेद–19 भारत के नागरिकों को वाक् और अभिव्यक्ति का मूल अधिकार प्रदान करता है। इसके निष्कर्ष स्वरूप, भारत में बंदी इस अधिकार से वंचित नहीं हैं। नागरिक और राजनीतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा, 1966 बंदियों के इस अधिकार के अनुरूप है, जो अनुच्छेद 19(2) के माध्यम से कहता है कि :–

सभी के पास वाक्–स्वातंत्र्य का अधिकार होगा; इस अधिकार में सभी प्रकार की जानकारी और विचार मांगना, प्राप्त करना और प्रदान करना शामिल है, सीमाओं की बाधाओं से परे, चाहे वाचक रूप में, या फिर उसकी पसंद के किसी और साधन के द्वारा नीचे वर्णित मामलों में भारतीय न्यायपालिका ने मीडिया के जानकारी इकट्ठा करने के अधिकार को स्वीकारा है, वो जानकारी जो कि बंदियों के अभिव्यक्ति के अधिकार से स्वीकृति रखती है और उनके गोपनीयता के अधिकार का सम्मान करते हुए उनकी सहमति से ली गई है।

प्रभा दत्त (ए.आई.आर. 1982 एस.सी. 6) के मामले में, एक पत्रकार के लोगों को इंटरव्यू करने के अधिकार का कानूनी मुद्दा उठा। न्यायालय ने इस अधिकार को सही ठहराया बशर्ते बंदियों की इंटरव्यू की इच्छा हो।

शीला बरसे का दूसरा मामला (1988(1) Bom Cr. 58) नागरिकों के जानकारी हासिल करने और बंदियों के इंटरव्यू करने के अधिकारों से तालुक रखता है। न्यायालय ने यह सही ठहराते हुए शुरूआत की

कि बंदी–गृह के मामलों का जनता की नज़र में आना आवश्यक है। ऐसी सामान्य टिप्पणियों के बाद न्यायालय ने इसी अधिकार को यह कहकर नपुंसक कर दिया कि पत्रकारों द्वारा इकट्ठा की गई जानकारी प्राधिकारियों द्वारा जाँची जाएगी ताकि "गलत जानकारी" न प्रचारित हो। टेप रिकॉर्डिंग को विशेष अनुमति के अधीन कर दिया गया। याचक को प्राधिकारियों के समक्ष फिर से एक अर्ज़ी लगाने की ज़रूरत थी।

याचक को एस.पी. गुप्ता के मामले पर भरोसा ज़रूरी है जिस मामले में सर्वोच्च न्यायाालय ने मजबूत शब्दों का प्रयोग करते हुए नागरिकों के यह जानने के अधिकार को माना है कि सरकार कैसे कार्य करती है।

स्टेट, सूपरइंटैनडंट द्वारा, सैंट्रल जेल, नई दिल्ली बनाम चायलता जोशी (1999 G.LJ 2273) मामले में अपर सेशंस न्यायाधीश (ए.एस.जे.) की समाचार पत्रिका को एक अभियोगाधीन बंदी के इंटरव्यू के लिए अनुमति जारी करने के अधिकार क्षेत्र पर सवाल उठा। सर्वोच्च न्यायालय ने न्यायालय की इस तरह की अनुमति देने के अधिकारक्षेत्र को सही ठहराया, बशर्ते वह अनुमति जेल नियम पुस्तक में निधारित कुछ शर्तों के अधीन हो, इंटरव्यू किए जाने वाले व्यक्ति की इच्छा के अधीन हो, और देश की प्रभुता, संपूर्णता, राज्य की सुरक्षा, सार्वजनिक व्यवस्था, शालीनता और नैतिकता का उल्लंघन न करे।